सिद्धार्थ का यौवन, बुद्ध का दर्शन और विश्व शान्तिःसमय की पुकार (दुनिया को युद्ध की नहीं बुद्ध की आवश्यकता)

डॉ0 उत्तरा यादव,

एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग,
महिला पी0जी0 कॉलेज, अमीनाबाद, लखनऊ

भूमिका एवं वर्तमान युग में बुद्ध की प्रासंगिकता

सिद्धार्थ एकदम सामान्य बालकों की तरह प्रकृति की गोद में पैदा हुए। शायद यही कारण था कि वे बचपन से जीवनपर्यन्त प्राकृतिक एवं नैसर्गिक नियमों को मानते रहे तथा अपने पूरे जीवन उन्होंने उनका अनुसरण किया तथा अपने अनुयायियों को कराया। उनको ज्ञान भी बोधिवृक्ष के नीचे प्राप्त हुआ। उन्होंने प्रथम प्रवचन भी प्रकृति में अपने प्रथम पांच शिष्यों को दिया तथा पूरे जीवन काल भ्रमण कर प्राकृतिक जीवन जीते हुए अपने अनुभव से प्राप्त ज्ञान को सभी के बीच बॉटा। यद्यपि उनका लालन–पालन राजकुमारों की तरह हुआ, लेकिन वैभव एवं ऐश्वर्यपूर्ण जीवन की निरर्थकता समय से पहले समझ में आ गया और वे 'तथागत' हुए अर्थात उन्होंने सत्य से परम सत्य की खोज की और उससे समस्त विश्व को आलोकित किया। सही मायने में सिकंदर महान नहीं, बल्कि महात्मा बुद्ध विश्वविजेता थे। आज विश्वशान्ति उनके सिद्धान्तों पर चलकर ही प्राप्त किया जा सकता है। यही समय की पुकार है। बुद्ध अतीत में प्रासंगिक थे, आज भी हैं एवं सदैव रहेंगे।

पूरी दुनिया में आजकल हिंसा, डर और आतंक का माहौल बना हुआ है और हम तनाव में जी रहे हैं। हर देश एक दूसरे को शक की निगाह से देख रहा है। विज्ञान का भीषण नरसंहारक हथियार बनाने में दुरुपयोग किया गया है। पूरी मानव जाति विनाश के कगार पर खड़ी हुई है। बड़े और शक्तिशाली देश छोटे और कमजोर देशों पर अपनी धौंस जमा रहे हैं और अपनी मर्जी की सरकारें बनवा रहे हैं और बड़ी बेशर्मी से अपनी सामरिक संहारक क्षमता का प्रदर्शन कर रहे हैं। जो देश उनकी दादागिरी मानने से इंकार करेगा वही मानवता का दुश्मन करार दे दिया जायेगा। लोग एक अजीब से डर और आतंक के माहौल में जीने को मजबूर किये जा रहे हैं। ऐसे में बुद्ध की शिक्षायें पहले से भी ज्यादा प्रासंगिक हो गयी हैं। ''बैर से बैर कभी शान्त नहीं होता, अबैर से ही बैर शान्त होता है। यही संसार का सनातन नियम है।'' भगवान् बुद्ध का यह उपदेश विश्व में शान्ति बनाये रखने के लिए अति आवश्यक है।

एक आदमी युद्ध में लाखों आदमियों को जीत ले और एक दूसरा अपने आपको जीत ले। बुद्ध कहते हैं यह दूसरा आदमी ही सच्चा युद्ध विजयी है। दूसरों को जीतने की अपेक्षा अपने को जीतना श्रेष्ठ है। जिसने अपने आपको जीत लिया, जो अपने को नित्य संयत रखता है, उसकी जीत को न देवता, न गंधर्व, न ब्रह्मा हार में परिणीत नहीं कर सकते हैं। विजय से बैर पैदा होता है, पराजित दुःखी रहता है। विजय, पराजय दोनों को छोड़कर शान्त मनुष्य सुखपूर्वक सोता है।

बुद्ध ने युद्ध का हर सम्भव विरोध किया है। उन्होंने बार–बार कहा कि युद्ध किसी भी समस्या का हल नहीं होता है, क्योंकि हर युद्ध में

जन–धन की अपार हानि होती है। दुनिया में 'धर्मयुद्ध' या 'उचित युद्ध' या 'न्याय के लिए युद्ध' जैसे शब्द जनता को गुमराह करने और मूर्ख बनाने के लिए गढ़े गये हैं। कोई भी युद्ध उचित या न्याय के लिए नहीं कहा जा सकता क्योंकि हर युद्ध (बगैर किसी अपवाद के) अपने पीछे बर्बादी और तबाही ही छोड़कर जाता है। जो शक्तिशाली हैं उनके द्वारा किया गया युद्ध उचित और जो कमजोर हैं, उनके द्वारा किया गया युद्ध अनुचित? हम जो करें वह उचित, दूसरे जो करें वह अनुचित, यह कैसे चलेगा? इसलिए बुद्ध ने कहा कि हर राष्ट्र की विदेश नीति पंचशील और परस्पर शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व पर आधारित होनी चाहिए।

श्रावस्ती में कौशल नरेश प्रसेनजित को धम्म का उपदेश देते हुए बुद्ध ने कहा कि एक देश की समृद्धि और सुरक्षा दूसरे देशों की गरीबी और असुरक्षा की कीमत पर नहीं होनी चाहिए। स्थायी शान्ति और समृद्धि तभी सम्भव है जब राष्ट्र सभी के कल्याणार्थ एकजुट होकर निष्ठापूर्वक कार्य करें। उपरोक्त उपदेश वर्तमान युग में खासकर केवल एक महाशक्ति वाले युग में और भी प्रासंगिक हो गया है। कोई भी देश कितना भी शक्तिशाली क्यों न हो जाये, लेकिन उसकी सुरक्षा तब तक स्थिर नहीं कही जा सकती जब तक दूसरे देश असुरक्षित हैं।

इसमें संदेह नहीं कि भारत में बुद्ध को हजारों या लाखों पाठकों ने पढ़ा होगा लेकिन हाल के घटनाक्रमों की रोशनी में इनको एक बार पढ़ना, बल्कि एक से अधिक बार पढ़ना और फिर–फिर सुनना आवश्यक हो जाता है। भगवान् बुद्ध की शिक्षाओं का मुख्य उद्देश्य मानव जीवन को सुखमय बनाना है। बुद्ध ने प्रकृति के नियमों का गहन अध्ययन किया और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि जो नियम बाहर वातावरण में काम कर रहे हैं, वहीं नियम हमारे शरीर के अन्दर भी काम कर रहे हैं। मानव शरीर में सभी लोक सभायें हुए हैं। मानव जीवन की मुख्य समस्या है– राग, द्वेष, मोह, घृणा, लालच और भय के विकारों से कैसे छुटकारा पाया जाय। यही विकार आपसी लड़ाई, एक दूसरे के साथ युद्ध, आर्थिक असमानता, शोषण–अत्याचार, भेदभाव, हिंसा और आतंकवाद को जन्म देते हैं। यह ऐसी मूलभूत समस्या है, जो प्रत्येक युग में रहेगी, केवल उनका रूप और स्थान बदलते हैं, ये समस्यायें जितनी बुद्ध के समय में थी, आज उससे भी ज्यादा है। **''दुनिया को आज युद्ध की नहीं, बुद्ध की जरूरत है।''**

कुछ लोगों को यह भ्रम है कि बुद्ध ने केवल अहिंसा की बात की है परन्तु भगवान् बुद्ध ने मानव जीवन और उसके आसपास के वातावरण से सम्बन्धित प्रत्येक पहलू का अध्ययन किया है और उपदेश दिया है। बुद्ध के विचारों की प्रासंगिकता आज पहले से भी अधिक है।

सिद्धार्थ का सम्पूर्ण जीवन विश्वशान्ति के लिए सन्देश है।

भगवान् बुद्ध का जन्म राजा शुद्धोधन और रानी मायादेवी के पुत्र के रूप में कपिलवस्तु के समीप लुम्बिनी में इसापूर्व 563 वैशाख पूर्णिमा के दिन हुआ था। पाँचवें दिन नामकरण संरकार किया गया तथा बालक का नाम सिद्धार्थ रखा गया। जिसका अर्थ है वह जिसने अपना उद्देश्य पूर्ण कर लिया है। उसके गोत्र का नाम गौतम था इसलिए वह गौतम सिद्धार्थ के नाम से लोकप्रिय हुआ। सात दिन की अल्पायु में उनकी माता महामाया का शरीर शान्त हो गया। मृत्यु से पहले माँ ने सिद्धार्थ को अपनी बहन प्रजापति को लालन–पालन के लिए सौंप दिया।

उनके पिता ने राजमहल में राजकुमार देखने के लिए विद्वान् ऋषि **'असितमुनि'** को आमंत्रित किया। राजकुमार को देखते ही ऋषि ने भविष्यवाणी की, **''यदि यह बालक गृहस्थ रहेगातो वह 'चक्रवर्ती सम्राट' बनेगा लेकिन यदि गृहत्याग कर प्रव्रजित बनेगा तो यह नवजात शिशु ''सम्यक् सम्बुद्ध'' के रूप में सारे संसार को मुक्ति प्रदान**

करेगा और वह संसार की भांति तथा अंधकार का नाश करने वाला बुद्ध होगा।'' उन्होंने यह भी कहा कि यह बालक किसी समय बीमार, वृद्ध या मृतक को देखकर संसार का त्याग भी कर सकता है। राजा यह सुनकर अत्यन्त चिन्तित हो उठे। उन्होंने अल्प आयु में ही सिद्धार्थ का विवाह कर दिया और उनके सुखों के **समस्त साधनों से सुसज्जित उपवन में उन्हें रहने का प्रबन्ध किया गया।** आठ वर्ष की आयु में उनके शिक्षण के लिए आचार्य के रूप में **'सब्बमित्त'** को नियुक्त किया गया और उन्होंने सिद्धार्थ को व्याकरण वेद, वेदांग, उपनिषद तथा दार्शनिक सिद्धान्तों में प्रवीण किया। जब कभी वह अपने पिता के खेतों में जाते और कोई काम नहीं होता तो एकान्त में बैठकर ध्यान **(विपश्यना)** का अभ्यास करने लगते थे। उसके मानसिक विकास के लिए सभी प्रकार की शिक्षाएं तो दी ही जा रही थीं, किन्तु उसे एक क्षत्रिय के योग्य सैनिक प्रशिक्षण प्रदान करने में भी कोई कोर–कसर नहीं छोड़ी जा रही थी। बुद्ध का प्रारम्भिक लक्षण भी अन्य बालकों से भिन्न था।

पिता शुद्धोदन को इस बात का पूरा ध्यान था कि कहीं ऐसी गलती न होने पाए कि सिद्धार्थ में मानसिक गुणों का ही विकास हो और वह पौरुष (पुरुषत्व) क्षत्रिय सैनिक शिक्षा में पिछड़ जाए। सिद्धार्थ स्वभाव से कारुणिक थे। वह यह पसन्द नहीं करता थे कि एक आदमी दूसरे आदमी का शोषण करे। एक बार वह अपने कुछ मित्रों सहित अपने पिता के खेत पर गये। वहॉ उन्होंने देखा कि मजदूर खेत जोत रहे हैं, बॉध, बांध रहे हैं और पेड़ काट रहे हैं। किन्तु तपती धूप में उनके तन पर पूरे कपड़े भी नहीं हैं।

वह उस दृश्य से द्रवित हो उठे। उन्होंने अपने मित्रों से कहा–क्या यह उचित है कि एक आदमी दूसरे आदमी का शोषण करे? यह कैसे ठीक हो सकता है कि मजदूर मेहनत करे और मालिक उसकी मजदूरी के फल से ऐशो–आराम करे? प्रथा के अनुसार उत्सव के दिन हर शाक्य को स्वयं अपने हाथों से हल जोतना होता था।

सिद्धार्थ ने हमेशा इस प्रथा का पालन किया और अपने हाथों से हल चलाया। वह शिकारियों के दल के साथ जाने से मना कर देते थे। उनके मित्र कहा करते थे, ''क्या तुम्हें शेरों से डर लगता है?'' वह प्रत्युत्तर देते थे, ''मैं जानता हूं कि तुम शेरों को मारने नहीं जा रहे हो, तुम हिरन तथा खरगोश जैसे निर्दोष जानवरों को ही मारने जा रहे हो।''

''शिकार के लिए न सही, कम से कम यह देखने के लिए ही आ जाओ कि तुम्हारे मित्रों का निशाना कितना अचूक है,'' वे कहते। सिद्धार्थ इस तरह के निमंत्रणों को भी यह कहकर अस्वीकार कर देते थे कि ''मैं निर्दोष पशुओं का वध होते देखना भी पसंद नहीं करता।'' सिद्धार्थ की इस प्रवृत्ति से प्रजापति गौतमी बहुत चिंतित रहती थी। वह उसके साथ तर्क करते हुए कहती, **''तुम भूल गए हो कि तुम एक क्षत्रिय हो और लड़ना ही तुम्हारा कर्तव्य है। युद्ध–कौशल तो शिकार के माध्यम से ही सीखा जा सकता है, क्योंकि शिकार करके ही तुम सीख सकते हो कि किस प्रकार ठीक–ठीक निशाना लगाया जा सकता है। योद्धा के लिए शिकार ही प्रशिक्षण–भूमि है।''**

सिद्धार्थ बहुधा गौतमी से पूछा करते थे, ''लेकिन मॉ! एक क्षत्रिय को क्यों लड़ना चाहिए?'' और गौतमी उत्तर दिया करती थी, ''क्योंकि यह उसका कर्तव्य है।'' सिद्धार्थ उनेके उत्तर से कभी भी संतुष्ट नहीं होते थे। वह गौतमी से पूछा करते थे, ''मॉ! यह तो बताओ कि एक आदमी का यह कर्तव्य कैसे हो सकता है कि वह दूसरे आदमी को मारे?'' गौतमी तर्क देती, ''यह मनोवृत्ति एक संन्यासी के लिए ही ठीक हो सकती है। लेकिन क्षत्रिय को तो अवश्य ही लड़ना चाहिए। यदि क्षत्रिय नहीं लड़ेगा तो राज्य की सुरक्षा कौन करेगा?''

''लेकिन मां! यदि सब क्षत्रिय परस्पर एक दूसरे से प्रेम करें तो क्या बिना किसी को मारे वे राज्य की सुरक्षा नहीं कर पाएंगे?'' इस पर गौतमी उसे उसके ही निर्णय पर छोड़ देती थीं। वह साथियों को अपने साथ बैठकर ध्यान करने हेतु प्रेरित करने का प्रयास करते। वह उन्हें बैठने का ठीक तरीका सिखाते थे। वह उन्हें एक विषय पर अपना चित्त एकाग्र करना सिखाते थे। वह उन्हें ऐसे विचारों को चुनने के लिए कहते जैसे, **''मैं प्रमुदित होऊँ, मेरे सम्बंधी प्रमुदित हों, समस्त पशु–पक्षी प्रमुदित हों।''**

लेकिन उनके मित्र इन बातों को गंभीरता से नहीं लेते थे। वे उनकी हंसी उड़ाते थे। वे आंखे बंद करने पर ध्यान के विषय पर चित्त एकाग्र नहीं कर पाते थे। इसके विपरीत, वे अपनी आंखों के सामने शिकार के लिए हिरन को पाते अथवा खाने के लिए मिठाइयॉ देखते। सिद्धार्थ का विश्वास था कि ठीक विषयों पर चित्त की एकाग्रता, विश्वव्यापी मैत्री भावना को विकसित करती है। वह स्वयं को सही सिद्ध करते हुए कहते, ''जब भी हम प्राणियों के बारे में विचार करते हैं, तो हमारा आरंभिक–चिंतन भेदभाव के साथ होता है। हम मित्रों को शत्रुओं से भिन्न कर लेते हैं। हम अपने पशुओं को पालतू पशुओं से भिन्न कर लेते हैं। हम अपने मित्रों और पालतू पशुओं से प्रेम करते हैं और अपने शत्रुओं तथा जंगली पशुओं से घृणा करते हैं।''

उत्कृष्ट कारुणिक भावना उनकी बचपन की विशेषता थी। एक बार वह अपने पिता के खेतों पर गये। विश्राम के समय वह एक वृक्ष के नीचे बैठे हुये आराम कर रहे थे और प्राकृतिक शांति और सौंदर्य का आनंद ले रहे थे। जब वह इस प्रकार बैठे थे, तभी आकाश से एक पक्षी ठीक उनके सामने आकर गिरा। पक्षी को एक तीर मारा गया था, जो उसके शरीर में घुस गया था और इस कारण वह पक्षी फड़फड़ा रहा था। सिद्धार्थ पक्षी की सहायता के लिए दौड़ पड़े। उन्होंने पक्षी का तीर निकाला, घाव पर पट्टी बांधी और उसे पीने के लिए पानी दिया। उन्होंने पक्षी को गोद में उठा लिया और उसी स्थान पर आये जहॉ वह पहले बैठे थे। उन्होंने अपने ऊपरी वस्त्रों में पक्षी को लपेट लिया और उसे गर्मी देने के लिए अपने सीने से लगा लिया।

देवदत्त (फुफेरे भाई) ने मॉग की कि पक्षी उसे दे दिया जाए। सिद्धार्थ ने पक्षी देने से इनकार कर दिया। दोनों में घोर विवाद होने लगा। देवदत्त ने तर्क दिया कि वही पक्षी का मालिक है क्योंकि शिकार के नियमों के अनुसार जो पक्षी को मारता है, पक्षी उसी का होता है। सिद्धार्थ के नियम की वैधता को अस्वीकार कर दिया। उन्होंने तर्क दिया कि जो किसी की रक्षा करता है, वही उसका स्वामी होने का दावा कर सकता है। भला मारने वाला किसी का स्वामी कैसे हो सकता है? दोनों में से एक भी पक्ष झुकने के लिए तैयार न था। मामला मध्यस्थ–निर्णय के लिए न्यायालय तक जा पहुंचा। न्यायालय ने सिद्धार्थ के पक्ष में निर्णय दिया। देवदत्त तभी सिद्धार्थ का स्थायी बैरी बन गया। लेकिन सिद्धार्थ की करुणा की भावना इतनी महान् थी कि उसने फुफेरे भाई की सदभावना प्राप्त करने की अपेक्षा एक निर्दोष पक्षी की जान बचाने को ही प्राथमिकता दी।

सिद्धार्थ गौतम का सोलहवां वर्ष पूरा हो चुका था। उनके माता–पिता भी उनके विवाह के लिए उतने ही इच्छुक थे। उन्होंने सिद्धार्थ को स्वयंवर में जाने और यशोधरा का पाणि–ग्रहण करने को कहा। उन्होंने माता–पिता की इच्छा पूरी करना स्वीकार कर लिया। स्वयंवर में पधारे तरुणों में से यशोधरा ने सिद्धार्थ गौतम को ही चुना। यशोधरा के पिता दंडपाणि अधिक प्रसन्न नहीं थे। उन्हें उन दोनों के दाम्पत्य जीवन की सफलता में संदेह था। उन्हें लगा कि सिद्धार्थ को तो साधु–संतों की संगति की लत लगी हुई है। वह एकांत को प्राथमिकता देते थे। वह कैसे एक

सफल सदगृहस्थ बन सकेंगे? यशोधरा ने निश्चय कर लिया था कि वह सिद्धार्थ गौतम से ही विवाह करेगी। उन्होंने अपने पिता से पूछा कि क्या साधु–संतों की संगति में रहना कोई अपराध है? यशोधरा ऐसा नहीं समझती थीं।

यद्यपि राजा (सिद्धार्थ के पिता) प्रसन्न थे कि पुत्र का विवाह हो गया है और उसने गृहस्थ जीवन में प्रवेश कर लिया है, फिर भी असित मुनि की भविष्यवाणी अब भी उनका पीछा कर रही थी। उस भविष्यवाणी को पूरा होने से रोकने के लिए उन्होंने सोचा कि सिद्धार्थ गौतम को जीवन के आनंदों और काम–भोगों में पूरी तरह से व्यस्त रखा जाए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए शुद्धोदन ने अपने पुत्र के रहने के लिए तीन महल बनवाए–एक ग्रीष्म ऋतु के लिए, दूसरा वर्षा ऋतु के लिए और एक तीसरा शीत ऋतु के लिए। उन्होंने इन महलों को हर तरह की सुविधाओं और भोग–विलास के साधनों से सुसज्जित कराया।

अपने कुल–पुरोहित उदायी के परामर्श से उसने विचार किया कि कुमार के लिए एक अंतःपुर की व्यवस्था की जाए, जिसमें अत्यधिक सुंदर स्त्रियां हों। शुद्धोदन ने तब उदायी से कहा कि वह उन षोडशियों को समझा दे कि वे किस प्रकार का आचरण करके जीवन के आनंद–भोग हेतु कुमार का दिल जीत लें। इस प्रकार इन प्रेमासक्त बालाओं ने राजकुमार को हर तरह से घेरने का प्रयास किया। उनकी वास्तविक अवस्था में देखकर राजकुमार ने बिना विचलित हुए एकाग्रचित होकर विचार किया। **''इन स्त्रियों में ऐसी क्या कमी है कि ये इतनी भी कल्पना नहीं कर सकती कि यौवन अस्थिर है। उनका जो भी सौंदर्य है, बुढ़ापा उसका नाश कर देगा।''** इस प्रकार प्रलोभन का यह क्रम बिना किसी परिणाम के महीनों–वर्षों तक चलता रहा।

जब शुद्धोदन को यह मालूम हुआ कि उसके पुत्र का चित्त किस प्रकार सांसारिक विषयों से सर्वथा विमुख हो गया है तो वह सारी रात सो नहीं सके। वह इसी प्रकार पीड़ित थे जैसे कि किसी हाथी के हृदय में तीर लगा हो।

शाक्यों का अपना एक संघ था। बीस वर्ष की आयु होने पर हर शाक्य तरुण को शाक्यसंघ में दीक्षित होकर संघ का सदस्य बनना होता था। सेनापति का प्रस्ताव तीन बार निर्विरोध पारित हो जाने पर, सिद्धार्थ के सदस्य के रूप में विधिवत शाक्यसंघ में सम्मिलित किए जाने की घोषणा कर दी गई। सिद्धार्थ का सत्बोधन करके उसने कहा, ''क्या आप अनुभव करते हैं कि संघ ने आपको अपना सदस्य बनाकर सम्मानित किया है?'' सिद्धार्थ का उत्तर था, ''मैं ऐसा ही अनुभव करता हूँ।'' पुरोहित बोले, ''मैं सर्वप्रथम आपको यह बताऊंगा कि संघ के सदस्य की हैसियत से आपके क्या कर्तव्य हैं।'' उसने उन्हें क्रमशः एक–एक करके गिनायाः–

''आपको अपने तन, मन और धन से शाक्यों के हितों की रक्षा करनी होगी। आपको कभी भी संघ की सभाओं में अनुपस्थित नहीं रहना होगा। आपको बिना किसी भय या पक्षपात के, किसी भी शाक्य का दोष पता चलने पर, खुलकर कह देना होगा।

यदि आप पर कभी कोई दोषारोपण किया जाए तो आप क्रोधित नहीं होंगे, दोषी होने पर अपना दोष स्वीकार कर लेना होगा, निर्दोष होने पर सफाई देने का पूर्ण अवसर प्राप्त होगा।''

पुरोहित ने आगे कहा, ''मैं अब आपको बताऊँगा कि क्या करने पर आप संघ की सदस्यता से वंचित किए जा सकते हैं–(1) व्यभिचार करने पर आप संघ के सदस्य नहीं रह सकते है, (2) हत्या करने पर आप संघ के सदस्य नहीं रह सकते है, (3) चोरी करने पर आप संघ के सदस्य नहीं रह सकते, (4) झूठी साक्षी देने का दोषी होने पर आप संघ के सदस्य नहीं रह सकते।'' सिद्धार्थ ने कहा, ''मान्यवर! मैं आपका कृतज्ञ हूँ कि आपने मुझे संघ के अनुशासन से

सम्बंधित नियमों से परिचित कराया। मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि मैं उनके अर्थ और व्यज्जन सहित उन्हें पालन करने का भरकर प्रयास करूंगा।''

सिद्धार्थ को शाक्यसंघ का सदस्य बने हुए आठ वर्ष व्यतीत हो चुके थे। वह संघ के अत्यन्त समर्पित और पक्के सदस्य थे। जितनी रुचि उन्हें निजी मामलों में थी, उतनी ही रुचि वह संघ के मामलों में भी रखते थे। संघ के सस्दय के रूप में उनका आचरण एक उदाहरण था और उन्होंने स्वयं को सबका प्रिय बना लिया था। उनकी सदस्यता के आठवें वर्ष में एक ऐसी घटना घटी जो शुद्धोदन के परिवार के लिए दुःखद बन गई और सिद्धार्थ के जीवन में संकटपूर्ण स्थिति पैदा हो गई। शाक्यों के राज्य की सीमा से सटा हुआ कोलियों का राज्य था। रोहिणी नदी दोनों राज्यों की विभाजक–रेखा थी। शाक्य और कोलिय दोनों ही रोहिणी नदी के पानी से अपने–अपने खेत सींचते थे। हर फसल पर उनका आपस में विवाद होता था कि कौन रोहिणी के जल का पहले और कितना उपयोग करेगा। यह विवाद कभी–कभी झगड़ों में बदल जाता और झगड़े लड़ाइयों में।

जिस वर्ष में सिद्धार्थ की आयु 28 वर्ष की थी उस वर्ष रोहिणी के पानी को लेकर शाक्यों के नौकरों और कोलियों के नौकरों के बीच एक बड़ा झगड़ा हो गया। दोनों ओर के लोग घायल हुए। मेरा प्रस्ताव है कि कोलियों के विरुद्ध यह संघ युद्ध की घोषणा कर दे। जो विरोध करना चाहें वे बोलें। सिद्धार्थ गौतम अपने स्थान पर खड़े हुये और बोले, ''मैं इस प्रस्ताव का विरोध करता हूँ। युद्ध से किसी प्रश्न का समाधान नहीं होता। युद्ध छेड़ देने से हमारे उद्देश्य की पूर्ति नहीं होगी। इससे एक दूसरे युद्ध का बीजारोपण हो जाएगा। किसी की हत्या करने वाले को कोई दूसरा हत्या करने वाला मिल ही जाता है; जो किसी को जीतता है उसे कोई दूसरा जीतने वाला मिल ही जाता है; जो आदमी किसी को लूटता है उसे को दूसरा लूटने वाला मिल ही जाता है।''

सेनापति ने सिद्धार्थ गौतम के तर्क का घोर विरोध किया। उसने इस बात पर जोर दिया कि युद्ध में क्षत्रियों के लिए कोई अपने–पराये का भेद नहीं किया जा सकता। उन्हें राज्य के हित में अपने सगे भाइयों से भी लड़ना होगा। बलि–कर्म ब्राह्मणों का कर्तव्य है, युद्ध करना क्षत्रियों का कर्तव्य है, व्यापार करना वैश्यों का कर्तव्य है और सेवा करना शूद्रों का कर्तव्य है। हर वर्ग को अपना–अपना कर्तव्य निभाने में ही पुण्य है। शास्त्रों की ऐसी ही आज्ञा है।

सिद्धार्थ ने उत्तर दिया, ''जहॉ तक मैं समझता हूं, धर्म तो इस बात को मानने में है कि वैर से वैर कभी शांत नहीं होता। यह केवल अवैर (प्रेम) से ही शांत हो सकता है।'' सेनापति अधीर हो उठा और बोला, ''इस दार्शनिक शास्त्रार्थ में पड़ना बेकार है। स्पष्ट बात तो यह है कि सिद्धार्थ को मेरा प्रस्ताव अमान्य है। हम संघ का मत लेकर इसका निश्चय करें कि संघ का क्या विचार है।'' यह देखकर कि उसके समर्थक मौन बैठे हैं सिद्धार्थ खड़ा हुआ और उसने संघ को संबोधित करते हुए कहा, ''मित्रों! आप जो चाहें, सो करें। आपके साथ बहुमत है। लेकिन मुझे खेद के साथ यह कहना पड़ रहा है कि मैं अनिवार्य सैनिक भर्ती का विरोध करूंगा। मैं आपकी सेना में सम्मिलित नहीं होऊंगा और मैं युद्ध में भी भाग नहीं लूंगा।''

सिद्धार्थ गौतम की बात का उत्तर देते हुए सेनापति ने कहा, **''उस शपथ का स्मरण करो जो तुमने संघ का सदस्य बनते समय ग्रहण किया था। यदि तुम उनमें से किसी एक का भी पालन न करोगे तो तुम सार्वजनिक निंदा के भाजन बनोगे।'' सिद्धार्थ ने उत्तर दिया, ''हां मैंने अपने तन, मन और धन से शाक्यों के हितों की रक्षा करने का वचन दिया है। लेकिन मैं नहीं समझता कि यह युद्ध शाक्यों के हित में है।**

शाक्यों के हित के मुकाबले में सार्वजनिक निंदा का मेरे लिए कोई मूल्य नहीं।''

''लेकिन याद रखो कि तुम्हें दंड देने के लिए संघ के पास और भी तरीके हैं। संघ तुम्हारे परिवार के सामाजिक बहिष्कार की घोषणा कर सकता है और संघ तुम्हारे परिवार के खेतों को जब्त भी कर सकता है। इसके लिए संघ को कोसलराज की अनुमति की आवश्यकता नहीं है।'' सिद्धार्थ ने समझ लिया कि यदि उसने कोलियों के विरुद्ध युद्ध–घोषणा करने के प्रस्ताव का अपना विरोध जारी रखा तो उसके क्या–क्या दुष्परिणाम हो सकते हैं। इसलिए उसे अब तीन बातों में से एक को चुनना था–(1) सेना में भर्ती होकर युद्ध में भाग लेना, (2) फांसी पर लटकना या देश निकाला स्वीकार करना, (3) अपने परिवार के लोगों का सामाजिक बहिष्कार और उनके खेतों की जब्ती के लिए राजी हो जाना।

वह पहली बात किसी भी हालत में स्वीकार न करने के लिए दृढ़ संकल्प था। तीसरी बात पर तो वह विचार तक नहीं सकता था। इस परिस्थिति में उसने सोचा कि उसके लिए दूसरी बात ही सर्वाधिक ठीक थी। तदनुसार सिद्धार्थ गौतम ने संघ को संबोधित किया, ''कृपया आप मेरे परिवार को दंडित न करें। सामाजिक बहिष्कार द्वारा उन्हें कष्ट न दें। उनके खेत जब्त करके उन्हें जीविका विहीन न करें। वे निर्दोष हैं। दोषी तो मैं हूं। मुझे अकेले ही अपनी गलती का दंड भोगने दीजिए। चाहें तो आप मझे फांसी पर लटका दें और चाहें तो आप मुझे देश निकाला दे दें। मैं स्वेच्छा से इसे स्वीकार कर लूंगा और मैं वचन देता हूं कि मैं इसकी अपील कोसलराज से भी नहीं करूंगा।''

सिद्धार्थ की तत्कालीन परिस्थितियों में प्रव्रज्या ही सम्यक समाधान था।

''सेनापति इसमें कठिनाई है, तो मैं एक आसान उपाय सुझा सकता हूं'', सिद्धार्थ गौतम ने उत्तर दिया। ''मैं परिव्राजक बन देश छोड़कर जा सकता हूं। यह भी एक प्रकार का 'देश–निकाला' ही तो है।'' प्रजापति गौतमी भी रोते हुए शुद्धोदन के साथ–साथ बोली, ''मैं भी इस बात से सहमत हूँ, तुम हम सब को इस प्रकार छोड़कर अकेले कैसे जा सकते हो?'' सिद्धार्थ ने सांत्वना दी, ''मॉ! क्या तुमने हमेशा एक क्षत्रिय की माता होने का दावा नहीं किया है? क्या ऐसा नहीं है? तब तो तुम्हें वीर होना चाहिए। इस प्रकार दुःखी होना तुम्हें शोभा नहीं देता है। यदि मैं युद्ध–भूमि में गया होता और वहां मारा जाता तो तुम क्या करती? क्या तब भी तुम इसी प्रकार दुःखी होतीं?''

गौतमी बोली, ''नहीं, वैसा तो एक क्षत्रिय के योग्य होता। लेकिन अब तुम लोगों से दूर जंगल में जंगली जानवरों के जानवरों के साथ रहने जा रहे हो। हम यहां कैसे शांति से रह सकते हैं? मैं कहती हूं कि तुम हमें भी अपने साथ ले चलो।'' ''यह संभव है कि मेरे प्रव्रज्या ग्रहण कर लेने पर शाक्यसंघ को अपनी युद्ध की घोषणा को वापस ले लेने के लिए राजी किया जा सके। किंतु यह सब कुछ पहले मेरे प्रव्रज्या ले लेने पर ही निर्भर करता है। ''मैंने वचन दिया है और मुझे उसे अवश्य पूरा करना चाहिए। वचन उल्लंघन का परिणाम हमारे लिए और शांति दोनों के लिए बहुत गंभीर हो सकता है। ''मां! अब मेरे मार्ग में बाधक न बनो। मुझे अपनी अनुमति और अपना आशीर्वाद दो। जो कुछ हो रहा है, वह अच्छे के लिए ही है।''

गौतमी और शुद्धोदन दोनों मौन हो गए। तब सिद्धार्थ यशोधरा के कक्ष में पहुंचे। उसे देखकर सिद्धार्थ मौन खड़ा हो गया, वह समझ नहीं पा रहा था कि अब क्या कहे और कैसे कहे। यशोधरा ने ही चुप्पी तोड़ते हुए कहा, ''कपिलवस्तु में शाक्यसंघ की सभी में जो कुछ भी हुआ वह सब मैं सुन चुकी हूं।'' सिद्धार्थ ने पूछा, ''यशोधरा! मुझे बताओं कि मेरे प्रव्रजित होने के निर्णय के बारे में तुम क्या सोचती हो?'' सिद्धार्थ

समझता था कि शायद यशोधरा हिम्मत हार जाएगी। किंतु ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। अपनी भावनाओं पर पूरा नियंत्रण रखते हुए उसने उत्तर दिया, ''यदि मैं ही तुम्हारी स्थिति में होती तो मैं भी इसके अतिरिक्त और क्या करती? निश्चय से मैं कोलियों के विरुद्ध छेड़े जाने वाले युद्ध के पक्ष में नहीं ही होती।''

''तुम्हारा निर्णय उचित निर्णय है। मेरी सहमति और समर्थन तुम्हारे साथ है। मैं भी तुम्हारे साथ प्रव्रजित हो जाती। यदि मैं प्रव्रजित नहीं हो पा रहीं हूं तो इसका एक मात्र कारण यही है कि अभी मुझे राहुल का पालन–पोषण करना है। ''अच्छा होता यदि ऐसा न हुआ होता। लेकिन स्थिति का सामना करने के लिए साहसी और वीर होना चाहिए। तुम अपने माता–पिता तथा पुत्र की चिंता न करो। मैं जब तक जीऊंगी, उनकी देख–भाल करती रहूंगी।'' ''अब मैं इतना ही चाहती हूं कि जब तुम सभी निकट सम्बंधियों को छोड़कर प्रव्रजित होने जा रहे हो, तो तुम किसी ऐसे नए जीवन–पथ की खोज करो, जो मानवता के लिए कल्याणकारी हो।''

सिद्धार्थ गौतम इस बात से बहुत प्रभावित हुए। इससे पहले उन्होंने कभी नहीं जाना था कि यशोधरा इतनी वीर, साहसी और उदार हृदय वाली स्त्री है और वह कितना गौरवाशाली है कि उसे यशोधरा जैसी पत्नी मिली और समय ने दोनों को पृथक–पृथक कर दिया। उन्होंने उसे राहुल को लाने को कहा। उन्होंने राहुल पर एक पिता की वात्सल्यपूर्ण दृष्टि डाली। फिर वह वहॉ से चले गये।

महाभिनिष्क्रमण (गृहत्याग) सिद्धार्थ का स्वेच्छा से किया महान त्याग एवं बलिदान है

सिद्धार्थ ने सोचा कि वह भारद्वाज से प्रव्रज्या प्राप्त करे, जिनका आश्रम कपिलवस्तु में ही था। तदनुसार वह अगले दिन अपने सारथी छन्न को साथ लेकर और अपने प्रिय अश्व कंथक पर चढ़कर आश्रम की ओर चल पड़े। जैसे ही उन्होंने आश्रम के अहाते में प्रवेश किया, उन्हें वहॉ उपस्थित भीड़ में अपने माता–पिता दिखाई दिये। तब उन्होंने **अपना सिर मुंडवाया, जैसा कि परिव्राजक के लिए आवश्यक था।** उनके चचेरे भाई **''महानाम''** परिव्राजक के योग्य वस्त्र और भिक्खापात्र ले आये। सिद्धार्थ ने उन्हें पहन लिया। इस प्रकार परिव्राजक–जीवन में प्रवेश करने के लिए तैयार होकर, सिद्धार्थ भारद्वाज के पास गये जिससे कि वह उसे **प्रव्रज्या** दे सके। अपने शिष्यों की सहायता से भारद्वाज ने आवश्यक संस्कार किए और सिद्धार्थ गौतम के **परिव्राजक** बन जाने की घोषणा की।

यह याद करके कि उन्होंने शाक्यसंघ के सम्मुख दोहरी प्रतिज्ञा की थी– एक तो प्रव्रज्या लेने की और दूसरे अविलंब ही शाक्य जनपद की सीमा से बाहर हो जाने की। सिद्धार्थ गौतम प्रव्रज्या का संस्कार समाप्त होते ही अपनी यात्रा पर चल पड़े। आश्रम में जो जनसमूह एकत्र हो गया था, वह असाधारण था, क्योंकि सिद्धार्थ गौतम की प्रव्रज्या की परिस्थितियां भी असाधारण थीं। जब राजकुमार आश्रम से बाहर निकले, जनसमूह भी उनके पीछे–पीछे हो लिया। उन्होंने कपिलवस्तु से विदा ली और अनोमा नदी की ओर आगे बढ़े। उन्होंने पीछे मुड़कर देखा तो जनसमूह अभी भी उनके पीछे–पीछे चला आ रहा था।

वह रुके और उन्हें सम्बोधित किया, ''बहनों और भाइयो! मेरे पीछे–पीछे आने से कोई लाभ नहीं है। मैं शाक्यों और कोलियों के बीच का झगड़ा निपटा सकने में असफल रहा हूॅ। लेकिन यदि तुम समझौते के पक्ष में जनमत तैयार कर लो, तो तुम सफल हो सकते हो। इसलिए कृपा करके वापस लौट जाओ।'' उसकी प्रार्थना सुनी तो भीड़ पीछे लौटने लगी। शुद्धोदन और गौतमी भी महल की ओर वापस चले गए। सिद्धार्थ गौतम के त्यागे वस्त्रों और गहनों को देखना गौतमी के

लिए असह्य था उसने उन्हें एक कमल के तालाब में फिंकवा दिया। जब सिद्धार्थ गौतम ने प्रव्रज्या ग्रहण की तो उसकी **आयु केवल 29 वर्ष की थी।** ''इसका यह स्वेच्छा से किया हुआ महान त्याग है। यह बहुत ही वीरता और साहस का कार्य है। संसार के इतिहास में इसकी उपमा नहीं मिलती है। यह शाक्यमुनि अथवा शाक्यसिंह कहलाने का अधिकारी है।''

अस्सी वर्ष की अवस्था में भगवान् बुद्ध ने अन्तिम सम्बोधन कुशीनगर में दिया। उन्होंने कहा, ''भिक्खुओं सुनो, सारे संसार में जितनी भी वस्तुएँ बनी हुई हैं, वे सभी नश्वर हैं, भंगुर हैं, मरणशील हैं, परिवर्तनशील हैं। यही प्रकृति का कठोर सत्य है। प्रकृति के इस सत्य का सम्पादन करते रहो। इस सत्य में स्थित रहकर अपना कल्याण साधते रहो।'' यह अन्तिम उपदेश देकर वैशाख पूर्णिमा की रात के तीसरे पहर में 483 ई0पू0 को तथागत महापरिनिर्वाण को प्राप्त हुए।

बोधिसत्त्व गौतम संबोधि–प्राप्ति के बाद बुद्ध बन गए

ज्ञान–प्राप्ति से पूर्व गौतम केवल एक बोधिसत्त्व थे। बोधि–प्राप्ति के बाद ही वह बुद्ध बने। बोधिसत्त्व कौन और क्या होता है? बोधिसत्त्व (दस पारमिताओं का पूर्ण पालन कर लेने वाला) वह प्राणी है जो बुद्ध बनने के लिए प्रयत्नशील रहता है। एक बोधिसत्त्व कैसे 'बुद्ध' बनता है? बोधिसत्त्व को लगातार दस जीवन–चरणों तक बोधिसत्त्व रहना पड़ता है। बुद्ध बनने के लिए एक बोधिसत्त्व को क्या करना होता है? अपने प्रथम जीवन–चरण में वह मुदिता (प्रसन्नता) प्राप्त करता है। जैसे सुनार सोने–चांदी के मैल को दूर करता है, वैसे ही एक बोधिसत्त्व अपने चित्त के मैल को दूर करके इस बात को स्पष्ट रूप से देखता है कि जो आदमी चाहे पहले प्रमादी रहा हो, लेकिन यदि वह प्रमाद का त्याग कर देता है तो वह बादल–मुक्त चंद्रमा की तरह इस लोक को प्रकाशित करता है। जब उसे इस बात का बोध होता है तो उस के मन में मुदिता उत्पन्न होती है और उस के मन में सभी प्राणियों का कल्याण करने की तीव्र इच्छा उत्पन्न होती है।

अपने दूसरे जीवन–चरण में वह विमला (विशुद्धि) भूमि को प्राप्त होता है। बोधिसत्त्व अब काम–वासना से सर्वथा मुक्त हो जाता है। वह कारुणिक होता है, वह सभी के प्रति कारुणिक होता है। न वह किसी व्यक्ति के अवगुण को बढ़ावा देता है और न किसी के गुण को घटाता है। अपने तीसरे जीवन–चरण में वह प्रभाकारी (दीप्ति) भूमि प्राप्त करता है। इस समय बोधिसत्त्व की प्रज्ञा दर्पण के समान स्वच्छ हो जाती है। वह अनात्म और अनित्यता के सिद्धांत को पूरी तरह से समझ लेता है और हृदयंगम कर लेता है। उसकी एकमात्र आकांक्षा उच्चतम प्रज्ञा प्राप्त करने की होती है और इसके लिए वह सब कुछ त्यागने के लिए तैयार रहता है।

अपने चौथे चीवन–चरण में वह अर्चिष्मती (प्रभा की बुद्धिमत्ता) भूमि को प्राप्त करता है। इस जीवन–चरण में बोधिसत्त्व अपना सारा ध्यान आष्टांगिक मार्ग, चार सम्यक व्यायामों, चार प्रकार के प्रयत्नों तथा चार प्रकार के ऋद्धि–बलों और पॉच प्रकार के शीलों पर केंद्रित करता है। पांचवे जीवन–चरण में वह सुदुर्जया (जीतने में दृढ़वत्ता) भूमि का प्राप्त करता है। वह सापेक्ष तथा निरपेक्ष के बीच के सम्बन्ध को अच्छी तरह हृदयंगम कर लेता है। अपने छठे जीवन–चरण में वह अभिमुखी भूमि को प्राप्त होता है। अब इस अवस्था में चीजों के विकास, उनके कारण, बारह निदानों को हृदयंगम करके बोधिसत्त्व पूरी तरह से तैयार हो जाता है और यह अभिमुखी नामक विज्ञान उसके मन में सीाी अविद्या–ग्रस्त प्राणियों के लिए असीम करुणा का संचार करता है।

अपने सातवें जीवन–चरण इमें बोधिसत्त्व दूरंगमा (एकाकारता) भूमि प्राप्त करता है। अब बोधिसत्त्व देश, काल के बंधनों से परे हो जाता है, वह अनंत के साथ एक हो जाता है, किंतु

अभी भी वह सभी प्राणियों के प्रति करुणा का भाव रखने के कारण नाम–रूप बनाए रखता है। वह दूसरों से इसी बात में पृथक होता है कि अब उसे संसार की भव–तृष्णा उसी प्रकार स्पर्श नहीं करती जिस प्रकार पानी किसी कमल के पत्तों को। वह प्राणियों की तृष्णा को शांत करता है, वह दान–शील होता है, वह क्षमा–शील होता है, वह दान, धैर्य, व्यवहार–कुशलता, शक्ति, शांति, बुद्धिमता और उत्कृष्ट प्रज्ञा से युक्त होता है।

अपने इस जीवन में वह धर्म का जानकार होता है लेकिन लोगों के सामने वह उसे इस ढंग से प्रस्तुत करता है कि लोग उसे समझ सकें। वह जानता है कि उसे कुशल तथा धैर्यवान होना चाहिए। दूसरे लोग उसके साथ कैसा भी व्यवहार करें वह समता–भावना के साथ उसे सहन करता है, क्योंकि वह जानता है कि अज्ञान के कारण ही वे उसके प्रयोजन को ठीक से नहीं समझ पा रहे हैं। इसके साथ–साथ वह दूसरों के कल्याण की दिशा में किए गए अपने प्रयास में तनिक भी शिथिलता नहीं आने देता और न ही वह अपने चित्त को प्रज्ञा से दूर होने देता है; इसलिए विपत्तियां उसे सुमार्ग से कभी नहीं हटा सकतीं। अपने आठवें जीवन–चरण में वह अचल हो जाता है। अचल अवस्था अथवा स्थिरता में बोधिसत्त्व को कोई प्रयास नहीं करना पड़ता। वह स्वेच्छा से अच्छाई का पालन करता है। वह जो कुछ भी करता है उसमें सफल होता है।

1. 2. 3. 4.

बुद्ध बनने से पूर्व दस जीवन–तक बोधिसत्त्व बने रहने की शर्त के सिद्धांत के सदृश कहीं भी कोई सिद्धांत नहीं है। कोई भी दूसरा धर्म अपने संस्थापक का ऐसी परीक्षा के लिए आह्वान नहीं करता।

तथागत का दर्शन एवं विश्व शान्ति

"दूसरों के साथ वह व्यवहार करें जो अपने लिए पसंद है।" **–गौतम बुद्ध**

महात्मा बुद्ध के सिद्धान्त एवं उनका जीवन मानवता के लिए एक वरदान है। उनका मध्यम अष्ठमार्ग अपने दैनिक जीवन में उतारकर कोई भी व्यक्ति अपना जीवन सफल एवं पूर्ण कर सकता है। उनके विचार मानव मात्र के लिए भूतकाल, वर्तमान एवं भविष्य तीनों कालों में शाश्वत, सार्वभौमिक तथा अत्यन्त उपयोगी है।

चार आर्यसत्य

पहला आर्यसत्य है –"दुःख है।" जन्म लेना दुःख है, बुढ़ापा आ जाना दुःख है, बीमारी दुःख है, मृत्यु दुःख है, अप्रिय चीजों से संयोग दुःख है, प्रिय चीजों से वियोग दुःख है। मनचाहा न होना दुःख है। अनचाहा होना दुःख है। संक्षेप में पॉच स्कन्धों से उपादान (अतिशय तृष्णा का होना) होना दुःख है।

दूसरा आर्यसत्य है –"इस दुःख का कारण है।" राग के कारण पुनर्भव अर्थात् पुनर्जन्म होता है जिससे इस और उस जन्म के प्रति अतिशय लगाव उत्पन्न होता है। यह लगाव काम–तृष्णा के प्रति होता और विभव तृष्णा के प्रति होता है।

तीसरा आर्यसत्य है –"दुःख निरोध आर्यसत्य"। इस तृष्णा को जड़ से पूर्णतः उखाड़ देने से इस दुःख का जड़ से निरोध हो जाता है जीवन–मरण का।

चौथा आर्यसत्य है –"दुःख निरोधगामिनी प्रतिपदा (दुःख से मुक्ति का मार्ग)"। इस दुःख को जड़ से समाप्त किया जा सकता है और जिसके लिए तथागत ने आठ अंगों वाला आर्य आष्टांगिक मार्ग खोज निकाला है– **सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वचन, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीविका, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति, सम्यक् समाधि है।**

जो भिक्खु परिव्रजित हैं, उन्हें दो अतियों से बचना चाहिए, पहली अति है कामभोगों में लिप्त रहने वाले जीवन की, यह कमजोर बनाने वाला है, गंवारू है, तुच्छ है और किसी काम का

नहीं है। दूसरी अति है आत्मपीड़ाप्रधान जीवन जो कि दुःख होता है, व्यर्थ होता है और बेकार होता है। इन दोनों अतियों से बचे रहकर ही तथागत ने मध्यम मार्ग का आविष्कार किया है।

गौतम बुद्ध ने पहला वर्षावास भिक्खुसंघ के साथ सारनाथ में बिताया। वर्षावास के समाप्त होने पर भिक्खुसंघ को सम्बोधित करते हुए बुद्ध ने कहा–''**चरथ भिक्खवे चारिकं, बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय, लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय, सुखाय देवमनुस्सानं मा एकेन द्वे अगमित्थ।**'' अर्थात् हे भिक्खुओं, बहुजनों के हित के लिए, बहुजनों के सुख के लिए, लोक पर अनुकम्पा करके समस्त विश्व का कल्याण के लिए लोगों के सुख के लिए, लोक पर अनुकम्पा करके समस्त विश्व के कल्याण के लिए लोगों के सुख और लाभ के लिए सभी दिशाओं में जाओ और लोगों को धम्म सिखाओ स्वयं भी इस पवित्र धम्म की साधना करते रहो, लोगों को धम्म मार्ग पर चलने की शिक्षा दीजिये जो आदि से अन्त तक कल्याणकारी हैं।

वयधम्मा संखारा, अप्पमादेन सम्पादेथ – भिक्खुओं! सुनो, सारे संखार व्यय–धर्मा हैं, मरण धर्मा हैं, नष्ट धर्मा हैं, जितनी भी संस्कृत यानी बनी हुई वस्तुएँ हैं, व्यक्ति हैं, घटनाएँ हैं, स्थितियाँ हैं, वे सब नश्वर हैं, भंगुर हैं, मरणशील हैं, परिवर्तनशील हैं, यही प्रकृति का कठोर सत्य है, प्रमाद से बचते हुए आलस्य से दूर रहते हुए, सतत् सचेत और जागरुक रहते हुए, प्रकृति के इस सत्य का संपादन करते रहो! इस सत्य में स्थित रहकर अपना कल्याण साधते रहो! – यह अंतिम उपदेश देकर वैशाख **पूर्णिमा की रात के तीसरे पहर में 483 ई0पू0 को तथागत महापरिनिर्वाण** को प्राप्त हुए।

भगवान् बुद्ध का धम्म एक आविष्कार है, एक खोज है क्योंकि पृथ्वी पर जो मानवीय–जीवन है। उनके गम्भीर अध्ययन का परिणाम है और जिन स्वाभाविक–प्रवृत्तियों को लेकर आदमी ने जन्म ग्रहण किया है, उन्हें पूरी तरह समझ लेने का परिणाम है और साथ ही उन प्रवृत्तियों को भी, जिन्हें आदमी के इतिहास ने जन्म दिया है और जो अब उसके विनाश का कारण बनी हुई है।

बुद्ध का धम्म दुःखवादी है और अगर सभी निर्वाण प्राप्ति में लग जायेंगे तो भौतिक उन्नति नहीं होगी, लोग मेहनत नहीं करेंगे इत्यादि... इत्यादि। यह मिथ्यापरक बातें हैं, वास्तविकता यह है कि बुद्ध के उपदेशों का उद्देश्य मानवीय चेतना को सुधारना और परिष्कृत करना था, दुःख और क्लेश से तड़पते मानवीय जीवन को सुख और शान्ति का मार्ग दिखाना था।

भगवान् बुद्ध केवल मार्गदाता थे। अपनी मुक्ति के लिए हर किसी को स्वयं अपने आप ही प्रयास करना होता है। हमें अपने स्वयं श्रम से तरना होता है, मुक्त होना होता है। कोई तथागत बड़े प्यार से मार्ग आख्यात करता है, मार्ग निर्देशन करता है, रास्ते पर चलते हुए मुक्त स्वयं होना पड़ता है।

भगवान् बुद्ध की सबसे महत्त्वपूर्ण देन यह है कि उन्होंने विश्व को दिखाया कि वे स्वयं भी अन्य लोगों की ही तरह एक गृहस्थ थे, वे कहीं से अवतरित नहीं हुए थे। उनका जन्म, विवाह, गृहस्थ जीवन सामान्य और प्राकृतिक था। उन्होंने सिखाया कि कैसे एक सामान्य व्यक्ति भी अपने मेहनत, त्याग और दृढ़ निश्चय से उच्च से उच्चतम अवस्था को पहुँच सकता है।

तुम्हेहि किच्चमातप्पं, अक्खातारों तथागता (धम्मपद 276, मग्गवग्ग) अर्थात् मैं तो मार्ग आख्यात करता हूँ तुम्हारी मुक्ति के लिए तपना तो तुम्हें ही पड़ेगा। **मुक्ति के लिए बुद्धमशरणं गच्छामि, धम्मं शरणम् गच्छामि, संघं शरणम् गच्छामि।**

"Ecstasy is when, what you think, what you say and what you do, must be in harmony?"

— Mahatma Gandhi

पालथी मारकर, ऑखें मूंदकर भगवान् बुद्ध की जो भी मुद्रायें दिखती हैं, वह ध्यानस्त मुद्रायें ही हैं और ध्यान अर्थात् किसी बाहरी ईश्वर, आत्मा–परमात्मा का ध्यान नहीं, अपितु विपस्सना द्वारा स्वयं का बोध जानना, मन के विकारों को दूर करना, मन को परिशुद्ध, निर्मल करना, यह विपस्सना द्वारा ही संभव है। विपस्सना ध्यान वास्तविकता पर और केवल सत्य पर ही आधारित होता है। विपस्सना नैतिक समर्पण, जीवनकालिक, आत्मविश्लेषी अनुशासन, आत्मज्ञान और स्वतः उत्तरदायित्व के माध्यम से उपचार करती है। अध्यात्म के इस अभ्यास में पूरे जीवन का आलिंगन है। हमें अपने प्रति उत्तरदायी बनाती है क्योंकि यह आत्म–अवलोकन द्वारा उजागर करती है कि हम अपनी प्रतिक्रियाओं तथा मान्यताओं को अपने जीवन में कितना अपनाते हैं।

विपस्सना साधक को **त्रिशरण (बुद्धं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणम् गच्छामि, संघं शरणम् गच्छामि)** व पंचशील की याचना करनी पड़ती है और दस दिनों तक पॉचों शीलों का पालन करना होता हैः–

1. **पहला शील है– जीव हिंसा से विरत रहना,**
2. **दूसरा शील है– चोरी से विरत रहना,**
3. **तीसरा शील है– ब्रह्मचर्य का पालन करना और व्यभिचार से विरत रहना,**
4. **चौथा शील है– असत्य भाषण से दूर रहना,**
5. **पॉचवा शील है– मद्यपान या नशीले पदार्थों के सेवन से दूर रहना।**

शीलों का व्रत लेने के बाद मन को एकाग्र करना सिखाया जाता है जिसे आनापान कहते हैं। आनापान के लिए विपस्सनाचार्य से आनापान सिखाने की याचना करने की औपचारिकता करनी पड़ती है। 'आनापान' पालि शब्द है जो **आन+अपान** से बना है। 'आन' अर्थात् आने वाला श्वांस, 'अपान' अर्थात् जाने वाला श्वांस। श्वांस के आने–जाने को अपने ही अनुभव से अपने ही नासिका के दोनों द्वारों पर देखना सिखाया जाता है।

विपस्सना पूर्णतः वैज्ञानिक ध्यानविधि है। विपस्सना साधना के अभ्यास से अनेकों मानसिक एवं शारीरिक रोग ठीक हो जाते हैं। मन की एकाग्रता और याददाश्त बढ़ती है, कार्यकुशलता में वृद्धि होती है। रचनात्मक गुणों में निखार आता है, नैतिकता और अनुशासन तथा आत्मविश्वास के सद्गुणों में वृद्धि होती है, नशीले पदार्थों के आदी लोगों को इन व्यसनों से मुक्त होने में सहायता मिलती है। **मनोविकारों के दूर होने से मन निर्मल, शांत एवं प्रसन्न होता है तथा परिवार में सुख और शान्ति बढ़ती है।**

विपस्सना साधना द्वारा शील सदाचार के पालन और करुणा, मैत्री, मुदिता और समता जैसे उच्च मानवीय गुणों को विकसित करके हम शांति और सुख का जीवन जी सकते हैं। इस प्रकार विश्वशान्ति आ सकती है।

सामाजिक समानता में योगदान

भगवान् बुद्ध ने अपने धम्म में समता और बराबरी पर अधिक जोर दिया, उन्होंने समाज में लोगों के बीच समानता की केवल शिक्षा ही नहीं दी बल्कि स्वयं उसका पालन किया। उन्होंने महिलाओं को दीक्षा का अधिकार देकर उन्हें भिक्खुणी बनने का अवसर दिया और दुनिया के इतिहास में पहली बार एक स्वतंत्र और पृथक् भिक्खुणी संघ की स्थापना की। स्त्रियों को बराबरी का हक देने वाले भगवान् बुद्ध विश्व के पहले धम्म गुरु बने।

भिक्षुणी संघ की स्थापना करके गौतम बुद्ध ने नारी स्वतंत्रता को अभिव्यक्ति प्रदान की और उनके चहुमुखी विकास का रास्ता प्रशस्त किया। यह ऐसा क्रान्तिकारी कदम था, जिससे स्त्रियों की स्वतंत्र अस्तित्व, उनके व्यक्तित्व को अभिव्यक्त करने का अवसर मिला और दुनिया के इतिहास में पहली बार स्त्रियों को यह सिद्ध करने का मौका मिला कि आध्यात्मिक मार्ग पर चलने में और आध्यात्मिक शक्ति प्रदान करने में स्त्रियाँ किसी भी तरह से पुरुषों से पीछे नहीं हैं।

दीक्षित होने का अधिकार मिलने से स्त्रियों को पहली बार घर के बर्तन–चौका करने के अलावा अपनी आत्म उन्नति करने के लिए साधना करने का मौका मिला और अपने मानवीय गुणों के चहुमुखी और सर्वांगीण करने का अवसर मिला। **भगवान् बुद्ध का कहना था कि स्त्रियाँ भी ज्ञान प्राप्त कर सकती हैं और ज्ञान के द्वारा निर्वाण सुख प्राप्त कर सकती हैं।**

गौतम बुद्ध से पहले वैदिक अवस्था में स्त्रियों को बराबरी का अधिकार नहीं है जो आज भी नहीं है। ऐसे में गौतम बुद्ध ने उनको बराबरी का अधिकार देकर समाज में उनको अपना महत्त्व अनुभव करने का अवसर दिया, जिसके परिणाम स्वरूप स्त्रियों में अपने प्रति सम्मान का भाव आया। सामाजिक दृष्टिकोण में भी उनके प्रति परिवर्तन आया। गौतम बुद्ध ने महिलाओं की शिक्षा और राजनैतिक जागरुकता पर भी जोर दिया। महिलाओं को भिक्षुणी बनने का अधिकार देकर, सामाजिक और धार्मिक क्रान्ति की, जबकि उससमय की वैदिक संस्कृति में स्त्रियों को केवल भोग–विलास की वस्तु समझा जाता था और उनके लिए धार्मिक कार्य वर्जित थे।

भिक्षुणी संघ में दीक्षा का अवसर मिलते ही हजारों की संख्या में स्त्रियाँ भिक्खुणी बनीं। भिक्खुणी संघ में हर वर्ग, सम्प्रदाय और हर जगह की महिलायें थीं। महाप्रजापति गौतमी जैसी राजरानियाँ, आम्रपाली जैसी नर्तकी, खेमा जैसी राजकुमारी यानी हर वर्ग की महिलायें थीं। समंगला, मथिका, वासंती जैसी असंख्य महिलाओं ने अत्यधिक जीवन की ऊँचाइयों पर पहुँचकर भिक्षुणी संघ का नाम रौशन किया और निर्माण सुख को प्राप्त हुईं। उन्होंने कला, संस्कृति और साहित्य के क्षेत्र में अद्‌भुत प्रगति की।

भिक्षुणी संघ में भिक्षुणियों का निरन्तर शिक्षा, संस्कृति और ध्यान साधना सिखायी जाती थी जिससे उनके व्यक्तित्व का चहुमुखी विकास हुआ।

भगवान् बुद्ध का बनाया हुआ भिक्षुणी संघ श्रीलंका में 1017 ईसवी तक फलता–फूलता रहा। अनंराधापुरा पर चोल आक्रमण के कारण धीरे–धीरे भिक्षुणी संघ बिखर गया। परन्तु सन् 1966 में भिक्षुणी संघ की पुनर्स्थापना कर दी गयी। आज बुद्ध धर्म चीन, जापान, तिब्बत, कोरिया, भूटान, बर्मा में क्यों नहीं समाप्त हुआ? बुद्ध धर्म न सिर्फ इन देशों में फल–फूल रहा है, बल्कि देश के अन्य हिस्सों में भी तेजी से फैल रहा है।

कुछ निहित स्वार्थी लोगों ने, जो महिलाओं को दीक्षा देने के पक्ष में नहीं थे, उन लोगों ने गौतम बुद्ध पर आरोप लगाया और कहा कि ऐसे तो उनका धम्म एक हजार वर्ष चलता, लेकिन स्त्रियों के भिक्षुणी बनने से केवल पाँच सौ वर्ष ही चलेगा। यह आरोप बेबुनियाद और सच्चाई से बहुत दूर था।

भगवान् बुद्ध ने तो महिलाओं को पुरुषों के बराबर हक दिया और समाज में उनको उचित स्थान दिलाया। बुद्ध ने स्त्रियों को राजनैतिक अधिकार दिया और भिक्षुणों संघ को स्वतंत्र रूप से चलाने का अवसर प्रदान कर उनकी सामूहिक क्षमता, राजनैतिक सोच और अपनी अलग पहचान विकसित करने का अवसर प्रदान किया।

गौतम बुद्ध ने जिस सामाजिक संरचना की परिकल्पना की थी, भिक्खु संघ उसका एक

आदर्श नमूना था। यह संघ पूरी तरह प्रजातांत्रिक था। बुद्ध ने संघ के लिए जो भी नियम बनाये, स्वयं भी उसकापालन किया। पंचशील और अष्टशील (आष्टांगिक मार्ग) भिक्खु और भिक्खुणी और गृहस्थ, उपासक–उपासिकायें सभी पालन करते थे।

प्रजातंत्र में योगदान

भगवान् बुद्ध ने प्रजातांत्रिक मूल्यों को बहुत अधिक महत्त्व दिया। विभिन्न राज्यों के राजाओं और शासन के अधिकारियों को उन्होंने सलाह दी कि कामकाज निश्चित कानून और नियमों के अनुसार ही चलना चाहिए। यदि कानून और नियम में परिवर्तन लाना है तो जनप्रतिनिधि सभा (जैसे आज संसद और विधानसभा है) में विचार–विमर्श के बाद मंजूर होना चाहिए। उन्होंने यह भी सलाह दी कि राज्य के विभिन्न विभागों में बराबर सामंजस्य होना चाहिए और परस्पर अविश्वास की स्थिति नहीं रहनी चाहिए।

उनके द्वारा स्थापित भिक्खु संघ और भिक्खुणी संघ दोनों का संगठन और संचालन पूरी तरह प्रजातांत्रिक ढंग से होता था। संघ के कायदे–कानून और उनको चलाने की प्रक्रिया से ज्ञात होता है कि ब्रिटेन में प्रजातंत्र आने से दो हजार साल पूर्व बुद्ध ने भिक्खु और भिक्खुणी संघ में प्रजातंत्र की प्रणाली लागू कर दी थी। गौतम बुद्ध चौदह भाषाओं में दक्ष थे, फिर भी उन्होंने सारे उपदेश उन दिनों की लोकभाषा पालि में ही दिये जिससे आम नागरिक धम्म को समझ सके और अपने जीवन में अपना सके।

गौतम बुद्ध की शिक्षाओं का मुख्य उद्देश्य जातिगत भेदभाव समाप्त कर सामाजिक समानता की स्थापना करना था। बुद्ध ने बार–बार कहा कि जन्म से न कोई ब्राह्मण होता है और न कोई शूद्र। इंसान का मूल्य उसकी जाति से नहीं उसके कर्मों से आंका जाता है। उन्होंने कहा कर्म से ही व्यक्ति ब्राह्मण बनता है और कर्म से ही चाण्डाल। ब्राह्मण जन्म से श्रेष्ठ होता है– इस वैदिक मान्यता को बुद्ध ने पूरी तरह नकार दिया। बुद्ध के समानता का सिद्धान्त लोगों के दिलों तक छू जाता था क्योंकि उससे उनका स्वाभिमान और आत्मसम्मान बढ़ता था और भौतिक जीवन जीने की प्रेरणा मिलती थी, जो कि प्रत्येक इंसान की मूलभूत आवश्यकता है।

हिंसा और आतंकवाद से निपटने के उपाय

भगवान् बुद्ध ने कहा– **"चोरी, हिंसा, नफरत, निर्दयता जैसे अपराधों और अनैतिक कार्यों का कारण गरीबी है।"** इनका निदान सजा देकर नहीं सम्भव है। एक दिन (अलवी गाँव में) भोजन के पश्चात् गौतम बुद्ध का उपदेश शुरु होने ही वाला था कि इतने में एक किसान आ गया जो भूखा था। भगवान् बुद्ध ने कहा पहले इस किसान को खाना खिलाओ, उसके बाद ही उपदेश शुरु होगा। भगवान् बुद्ध ने कहा भूखे आदमी का मन उपदेश सुनने में कैसे लग सकता है? भूख से बड़ा कोई दुःख नहीं होता, भूख हमारे शरीर की ताकत को खत्म कर देती है, जिससे हमारी खुशी, शान्ति, स्वास्थ्य सभी समाप्त हो जाते हैं। हमें भूखे को भोजन देना कभी नहीं भूलना चाहिए। यदि हमें एक समय का खाना न मिले तो परेशानी होने लगती है तो उन लोगों के कष्ट की कल्पना कीजिये जिनको कई दिनों तक खाना नहीं मिलता। हमें कुछ ऐसा इंतजाम करना चाहिए जिससे इस दुनिया में एक भी व्यक्ति भूखा न रहे।

श्रावस्ती में कोसल नरेश प्रसेनजीत को उपदेश देते हुए बुद्ध ने कहा, राज्य की अर्थव्यवस्था और न्याय–प्रणाली सुधारो। सजा देने, जेल में रखने और शारीरिक दण्ड देने से अपराधों पर काबू नहीं पाया जा सकता। अपराध और हिंसा गरीबी के स्वाभाविक परिणाम हैं। अतः जनता की सहायता करने, उसकी सुरक्षा का सर्वोत्तम उपाय करने के लिए, स्वस्थ अर्थव्यवस्था

के निर्माण करने पर ध्यान केन्द्रित करना उचित होगा। गरीब किसानों को भोजन, बीज और खाद उर्वरकों पर तब तक आर्थिक सहायता दी जाय जब तक कि वे आत्मनिर्भर न हो जायें। छोटे व्यापारियों को पूंजी उधार दी जाय। सरकारी कर्मचारियों को पर्याप्त वेतन दिया जाय, लोगों से बेगार कराना बंद किया जाय, लोगों को अपना व्यवसाय चुनने का अवसर दिया जाय। जब लोग अपने–अपने व्यवसाय में लग जायेंगे, कोई एक–दूसरे को परेशान नहीं करेगा। साथ ही अर्थव्यवस्था में सुधार आयेगा और देश की आय भी बढ़ेगी। जनता में अमन–चैन और खुशहाली आयेगी। लोग बच्चों को अपनी गोद में लेकर खुशी से नाचेंगे–गायेंगे और दरवाजों में ताला बंद करना छोड़ देंगे। इस प्रकार बुद्ध ने कानून व्यवस्था और अमन–चैन कायम करने के लिए भय और दण्ड का सहारा न देकर, लोगों की समस्याओं को समझकर, उन्हें सुझाने को कहा, जिससे समस्या को जड़ से समाप्त किया जाय। आज जब भारतवर्ष में कश्मीर से लेकर विभिन्न राज्य हिंसा, आतंकवाद, नक्सलवाद से जूझ रहे हैं, ऐसे में बुद्ध द्वारा दी गयी शिक्षा और अधिक प्रासंगिक हो जाती है।

शासन में धम्म

राजधर्म समझाते हुए गौतम बुद्ध कहते हैं– राजा को कई निर्णय जल्दबाजी में नहीं लेना चाहिए, खूब सोच–विचार करके करना चाहिए। इसी प्रकार एक और प्रसंग में बुद्ध ने कहा– **''राजा को मुकदमों का फैसला धर्म, न्याय से करना चाहिए, राग–द्वेष आदि विकारों से वशीभूत होकर नहीं करना चाहिए।''**

कपिलवस्तु में राजा शुद्धोधन (पिता) शाक्यवंश (जिस वंश के बुद्ध थे) के लोगों को उपदेश देते हुए गौतम बुद्ध ने कहा– शासन और राजनीति में धम्म का प्रयोग करके शासन–व्यवस्था को सुधारा जा सकता है। सामाजिक समानता और समरसता लायी जा सकती है और सबको न्याय दिया जा सकता है। बुद्ध ने कहा– ''जब राजनीतिज्ञ पर्याप्त बुद्धिमान और प्रेमभाव से युक्त होगा, तो वह गरीबी, असमानता, उत्पीड़न जैसे विषयों की सत्य स्थिति को समझ सकेगा। ऐसे ही शासन व्यवस्था में भी सुधार कर सकता है, जिससे अमीर और गरीब के बीच अन्तर कम हो सके और अन्य लोगों के साथ बल प्रयोग की आवश्यकता ही समाप्त हो जाय। विलासितापूर्ण जीवन में क्यों रहते हो, सम्पत्ति ही शासन और प्रजाजनों के बीच सबसे बड़ी बाधा बनकर उभरता है। सादा और असाधारण जीवन जियो, अपना समय लोगों की सेवा में लगाओ, न कि सिर्फ भोग–विलास में। यदि नेता स्वयं अच्छा उदाहरण प्रस्तुत नहीं करता, तो वह लोगों का प्रेम और सम्मान कैसे अर्जित कर सकता है। सदा सहायता का शासन कानून और व्यवस्था के नियमों से सर्वथा भिन्न होता है। सदासहायता का शासन दण्ड पर आधारित नहीं होता। सच्ची प्रसन्नता तो दया भाव से ही प्राप्त किया जा सकता है। जातक कथा में भगवान् बुद्ध ने राजा, आज के सन्दर्भ में राजनेता और सरकारी अधिकारी के दस कर्त्तव्य बताये हैं:–

1. पहला कर्त्तव्य है उदारता, विशाल हृदय और दानशीलता, शासन में बैठे लोगों को धन और सम्पत्ति से मोह न करके, सरकारी आय को जनता की भलाई के लिए इस्तेमाल करना चाहिए।
2. शील और सदाचार का जीवन जीना चाहिए।
3. जनता की भलाई के लिए अपनी सुख–सुविधायें त्यागकर, नाम और शोहरत के चक्कर में न पड़ते हुए, जनता के हित में कार्य करना चाहिए।
4. शासन को ईमानदारी और तत्परता के साथ बिना किसी दबाव के चलना चाहिए।

5. सौम्य एवं दयालु होना चाहिए।
6. जीवन सादा और साधारण, भोग–विलास से रहित होना चाहिए।
7. किसी के प्रति ईर्ष्या, बैर–भाव और द्वेष से मुक्त होना चाहिए।
8. अहिंसात्मक होना चाहिए, देश में शान्ति के लिए प्रयासरत रहना चाहिए।
9. सहनशीलता, धैर्य और सहिष्णुता के साथ, अपना संतुलन खोये बिना, दुःख–दर्द सहने का सामर्थ्य होना चाहिए।
10. जनता की राय के सामने उसको नतमस्तक होना चाहिए।

अर्थात् कोई भी ऐसा काम नहीं करना चाहिए जिससे जनता को नुकसान पहुँचता हो और लोगों की सुख–शान्ति एवं एकता में बाधा आती हो। सम्राट अशोक ने अपने शासनकाल में उपरोक्त सभी बातों को ध्यान में रखकर शासन चलाया था जो भारत का सर्वोत्तम शासन माना जाता है और जिसके लिए अशोक को **'देवानामप्रिय अशोक'** और **'महान् अशोक'** की उपाधियों से सुशोभित किया गया है।

धर्मनिरपेक्षता

भगवान् बुद्ध सभी धर्मों के प्रति समभाव के पक्षधर थे, उन्होंने अपनी शिक्षाओं की प्रशंसा को कभी जरूरत से ज्यादा महत्त्व नहीं दिया और न ही उसकी आलोचना करने वालों की निंदा की। अम्बालथ्थिका में ब्रह्मजाल सुत्त का उपदेश देते हुए उन्होंने कहा, ''भिक्खुओं जब भी आप लोग मेरी या सद्धर्म मार्ग की आलोचना सुनें, तो उस पर न तो क्रोध करने की, न परेशान होने की और न ही अमर्ष अनुभव करने की आवश्यकता है। ऐसी भावनाओं से आपकी अपनी ही हानि होगी, जब भी कोई मेरी या सद्धर्म मार्ग की प्रशंसा करे, तब भी प्रसन्न, हर्षित अथवा संतोष की भावनाएँ मन में मत आने दीजिये। इनसे भी आपकी स्वयं की ही हानि होगी। इस सम्बन्ध में सही दृष्टिकोण यह है कि आलोचना में क्या बात सत्य है और क्या असत्य,ऐसा विश्लेषण करने से ही आप अपने अध्ययन में प्रगति कर सकोगे और साधना अभ्यास मार्ग पर आगे बढ़ सकोगे... जिन्होंने धर्म की सूक्ष्मता और मुख्य तत्त्वों को समझ लिया है, वे प्रशंसा के चंद शब्द ही कहेंगे, वे चेतना–जाग्रति के सच्चे ज्ञान को समझते हैं। ऐसा ज्ञान प्रगाढ़, सूक्ष्म और अनिर्वचनीय होता है। यह सामान्य विचारों और शब्दों से परे की बात होती है... भिक्खुओं इस संसार में अगणित दर्शन, सिद्धान्त और मत हैं। लोग इन सब पर अनन्त समय तक आलोचना–प्रत्यालोचना कर सकते हैं। किन्तु मैंने इनका जो सार समझा है, उसके अनुसार 62 सिद्धान्त हैं जिनमें हजारों दर्शनों और धार्मिक मत–मतान्तरों को समाहित किया जा सकता है। चेतना जाग्रति और आत्ममुक्ति के मार्ग के अनुसार इन सभी सिद्धान्तों में त्रुटियाँ हैं और उनसे बाधायें उत्पन्न होती हैं।''

राजगृह में गृद्धकूट शिखर पर दो हजार भिक्खुओं और भिक्खुणियों को समझाते हुए उन्होंने संघ में एकता बनाये रखने और विघटन से बचाये रहने के लिए कहा– ''दल बनाकर आपस में मिलते रहो, धम्म चर्चा करते रहो, मिलने और विदा होने के समय सहयोग–एकता की भावना रखो, निर्धारित शीलों का पालन करो, संघ के गुणी और अनुभवी वरिष्ठ भिक्खुओं का आदर करो और उनके मार्ग–निर्देशों का पालन करो। आकांक्षाओं से मुक्त शुद्ध एवं सादगी भरा जीवन बिताओ, उद्वेगरहित शांतिपूर्ण जीवन का आनन्द उठाओ। शान्ति, आनन्द और मुक्ति प्राप्त करने के लिए आत्म–चेतना को जाग्रत रखो, जिससे मित्रों को धम्म मार्ग पर शरण दे सको और उनकी सहायता कर सको। यदि ऐसा करोगे तो धम्म फले–फूलेगा और कभी इसका पतन नहीं होगा। बाहर की कोई ताकत संघ को नहीं तोड़ पायेगी। आन्तरिक कलह और मतभेद से ही संघ विभाजित

हो सकता है। गप्पें मारने, अत्यधिक सोने, नाम, और यश और प्रसिद्धि बटोरने की लालसा मत करो, कामनाओं के पीछे मत भागो और घटिया चरित्र वाले लोगों की संगत में समय मत बर्बाद करो। सजग अवस्था में यात्रा करो, धम्म का विश्लेषण करते रहो, सजग और शांत चित्त से ध्यान करते रहो और संसारों की अनित्यता को हमेशा ध्यान में रखो जिससे पूर्ण मुक्त होकर निर्वाण तक पहुँच सको।

गृहस्थ एवं पारिवारिक जीवन के लिए उपदेश

भगवान् बुद्ध ने परिवार के लोगों में उनके आपसी सम्बन्ध कैसे हो, दोस्तों और रिश्तेदारों से सम्बन्ध कैसे हों, लोगों के आपसी सामाजिक सम्बन्ध कैसे हों, इस पर विस्तार से उपदेश दिया है।

दीघनिकाय के सिगाला सुत्त से पता चलता है कि एक बार भगवान् बुद्ध राजगृह में बेलुवन में विहार कर रहे थे। भिक्षाटन के लिए निकले बुद्ध की श्रेष्ठीपुत्र सिगाल से मुलाकात हुई जो छहों दिशाओं को झुककर नमस्कार कर रहा था। बुद्ध के पूछने पर उसने बताया कि उसके पिता ने बचपन से ही छहों दिशाओं को नमन करना सिखाया था, लेकिन इसका मतलब उसे मालूम नहीं है।

भगवान् बुद्ध ने सिगाल को उपदेश देते हुए कहा कि उनके धम्म में पूरब का मतलब माता–पिता, दक्षिण का मतलब गुरु और शिक्षक, पश्चिम का मतलब पत्नी और बच्चे, उत्तर का मतलब मित्र और रिश्तेदार और समाज, धरती का मतलब कर्मचारी, नौकर–चाकर और आसमान का मतलब साधु, संत, महापुरुष तथा आदर्श व्यक्ति होता है। बुद्ध ने कहा कि छः दिशाओं की पूजा इस ढंग से करनी चाहिए। भगवान् बुद्ध ने माता–पिता की सेवा करना सिखाया। उन्होंने काल्पनिक ईश्वर को नहीं बल्कि माता–पिता को ही ब्रह्म कहा। **'ब्रह्मा ति मातापितरो'** बुद्धिमान आदमी को माता–पिता का उचित आदर–सत्कार करना चाहिए, उनकी पूजा करनी चाहिए। ब्रह्म का मतलब है अनन्त मैत्री, अनंत मुदिता, अनंत करुणा और अनंत उपेक्षा (समताभाव) से भरा हुआ व्यक्ति। बुद्ध ने माता–पिता को ही ब्रह्म दर्जा दिया। उन्होंने कहा माता–पिता ही जन्म देने वाले और बच्चों का पालन–पोषण करने वाले होते हैं, इसलिए हर इंसान को अपने माता–पिता का आदर करना चाहिए, बुढ़ापे में उनकी देखभाल करनी चाहिए और उनके लिए जो भी संभव हो वह अवश्य करना चाहिए। बुद्ध ने कहा कि अपने परिवार के मान–सम्मान को अक्षुण्ण रखना चाहिए और बच्चों को अपने माता–पिता द्वारा कमाई गई सम्पत्ति की रक्षा करनी चाहिए, उन्होंने कहा कि कोई भी इंसान दिन–रात अपने माता–पिता की सेवा करे तो भी वह उनके ऋण से मुक्त नहीं हो सकता। उनके ऋण से मुक्त होने का एक ही तरीका है कि अगर माता–पिता शीलवान नहीं है तो उन्हें शीलवान बनने में सहायता करें, शीलवान हैं मगर समाधि में प्रतिष्ठापित नहीं है तो समाधि में प्रतिष्ठापित करने में मदद करें, अगर शीलवान हैं तो समाधि में प्रतिष्ठित हैं लेकिन प्रज्ञा में प्रतिष्ठित नहीं है तो उन्हें प्रज्ञा में प्रतिष्ठित करें। बुद्ध ने आगे कहा कि माता–पिता का भी अपने बच्चों के प्रति उत्तरदायित्व होता है, उनकी जिम्मेदारी है कि वे अपने बच्चों को बुरी आदतों और अकुशल कामों से बचाकर रखें, उन्हें अच्छी से अच्छी शिक्षा दिलायें, उन्हें अच्छे व आय वाले काम–धंधे में लगायें, विवाह योग्य हो जाने पर उनका अच्छा रिश्ता करें और उचित समय आने पर पारिवारिक सम्पत्ति उनके सुपुर्द कर दें।

शिष्य को अपने गुरु का आदर–सम्मान करना चाहिए, उनकी आज्ञा का पालन करना चाहिए। उनकी आवश्यकताओं को पूरा करना चाहिए तथा मेहनत और लगन से पढ़ाई करनी चाहिए। शिक्षक को भी अपने शिष्य को सही और समुचित शिक्षा/ज्ञान देना चाहिए। उसे उचित

रूप से पढ़ाना चाहिए। अच्छी संगत के लिए उसे प्रेरित करना चाहिए, शिक्षा समाप्त होने पर रोजगार प्राप्त करने में सहायक होना चाहिए।

पति और पत्नी के बीच के प्यार को उन्होंने पवित्र प्यार की संज्ञा दी। उसे सादर ब्रह्मचर्य (पवित्र गृहस्थ जीवन) कहा। उन्होंने पति और पत्नी के सम्बन्ध को सर्वोच्च सम्मान दिया। उन्होंने कहा कि पति और पत्नी एक दूसरे के विश्वासपात्र रहें। एक दूसरे का सम्मान करें, एक दूसरे के प्रति पूरी तरह समर्पित रहें, एक दूसरे के प्रति अपने उत्तरदायित्व का पालन करें। उन्होंने कहा कि पति–पत्नी एक दूसरे के पूरक होते हैं। **पति का कर्त्तव्य है कि वह अपनी पत्नी के मान–सम्मान की रक्षा करें, कभी न अपमान करे, न अपमान होने दे, अनैतिक मिथ्याचार से दूर रहे, अपनी आय के हिसाब से धन–दौलत से पत्नी को संतुष्ट रखे और समय–समय पर पत्नी को वस्त्र–आभूषण का उपहार देता रहे। पत्नी का भी यह कर्त्तव्य है कि घर के कामकाज ठीक से करे, घर के कामकाज में आलस न करे, परिवार के सभी व्यक्तियों का आदर करे, रिश्तेदारों का उचित आदर–सत्कार करे, अनैतिक मिथ्याचार से दूर रहे, पति की आय की सुरक्षा करे, सतर्क और दक्ष रहे।**

भगवान् बुद्ध ने कहा कि मित्रों, पड़ोसियों, रिश्तेदारों का उचित आदर–सत्कार करना चाहिए, उनसे प्यार और प्रसन्नता से बात करनी चाहिए। उनकी भलाई की कामना करनी चाहिए, उनसे बराबरी का व्यवहार करना चाहिए और समय आने पर उनकी मदद करनी चाहिए, संकट के समय कभी साथ नहीं छोड़ना चाहिए।

मालिक का अपने नौकरों और कर्मचारियों के प्रति भी उत्तरदायित्व है। उनकी यह जिम्मेदारी बनती है कि वे उन्हें उनकी योग्यता और क्षमता के अनुसार ही काम दें, काम के बदले समुचित वेतन और पारिश्रमिक दरें। उनकी चिकित्सा का ख्याल रखें, समय–समय पर उन्हें अनुदान–बख्शीश और बोनस देते रहें। नौकर और कर्मचारी की भी जिम्मेदारी है कि वह आलस्य को त्याग कर मेहनत–लगन और पूरी निपुणता से अपना काम करे, ईमानदार हरे, आज्ञाकारी रहे और कभी भी मालिक को धोखा न दे।

उपासक और भिक्खु के सम्बन्धों के बारे में बुद्ध ने कहा कि उपासक–उपासिकाओं को अपने धम्मगुरु, भिक्खुओं की भौतिक आवश्यकताओं को प्यार और सम्मान के साथ पूरा करना चाहिए। धम्मगुरु को करुण–हृदय से उपासक– उपासिकाओं को धम्म सिखाना चाहिए जिससे कि वो धम्ममार्ग पर चलकर नैतिक व आध्यात्मिक जीवन जी सकें।

उन्होंने सिगाल को कहा कि लालच, गुस्सा, वासना, भय और ईष्या के वशीभूत होकर कोई काम नहीं करना चाहिए। उन्होंने आगे कहा कि नशा मत करो, सड़कों पर देर रात मत घूमो–फिरो, जुआखाने में मत जाओ, वेश्यावृत्ति और नाच–तमाशे से दूर रहो, चरित्रहीन लोगों की संगत मत करो और आलसी मत बनो, क्योंकि ये आदतें विनाश की ओर ले जाने वाली हैं। इतना ही नहीं, उन्होंने यह भी बताया कि कैसे व्यक्ति से दोस्ती करनी चाहिए, उन्होंने कहा कि अच्छा दोस्त वही है जिसकी दोस्ती में स्थिरता हो, जो अमीरी–गरीबी, सुख–दुःख, सफलता–असफलता सभी परिस्थितियों में एक–सा व्यवहार करे, जिसकी भावना आपके प्रति डगमगाती न रहे, आपकी बात सुने, मुसीबत के दिनों में साथ दे, अपने सुख–दुःख में शामिल करे और आपके सुख–दुःख को अपना समझे।

सद्गुणी लोगों से सम्बन्ध बढ़ाओ और घटिया लोगों की संगत और घटिया मार्ग त्याग दो, आत्म–साधना और सच्चरित्रता बढ़ाने वाले वातावरण में रहो, सद्धर्म एवं शील अपनाने और अपना कार्य गहनता से कर सकने के अवसरों को बढ़ाते रहो, अपने माता–पिता, पति या पत्नी और बच्चों की अच्छी तरह देखभाल करें, उनके लिए

समय निकालें, अपने समय, साधनों और प्रसन्नता में औरों को भी भागीदार बनाओ। सद्गुण अपनाने के लिए अवसर जुटाओ और मद्यपान एवं जुए से बचो। विनम्रता, कृतज्ञता और सादा जीवनयापन की कला सीखो। भिक्खुओं के निकट आने के अवसर में रहो जिससे सद्धर्म का अध्ययन कर सको। चार आर्य सत्यों के आधार पर जीवनयापन करो। ध्यान–साधना सीखो जिससे दुःखों और चिंताओं का नाश हो सके।

भगवान् बुद्ध के बताये इन सूत्रों का पालन कर हम अपना गृहस्थ और पारिवारिक जीवन सुखी बना सकते हैं।

श्रम का महत्त्व

भगवान् बुद्ध श्रम को बहुत महत्त्व देते थे। श्रमिकों को वे सम्मान की दृष्टि से देखते थे। भगवान् बुद्ध श्रमण संस्कृति के थे। श्रमण का अर्थ ही होता है कि किसी की कृपा के भरोसे न जीकर, खुद के श्रम द्वारा मुक्त अवस्था तक पहुँचना।

भगवान् बुद्ध को शारीरिक श्रम से भी किसी तरह की अरुचि नहीं थी। वप्रमंगल उत्सव (धान बोने के प्रथम दिन मनाया जाने वाला उत्सव जिसमें हर शाक्य को अपने हाथ से हल जोतना पड़ता है) के समय वे स्वयं हल जोता करते थे। उनके पिता राजा शुद्धोधन के पास बहुत खेत थे। एक दिन अपने मित्रों सहित सिद्धार्थ अपने पिता के खेत पर गये। वहाँ उन्होंने देखा कि मजदूर खेतों में काम कर रहे हैं, किंतु उनके तन पर पर्याप्त कपड़े भी नहीं हैं। वे तपती दोपहरी में सूरज की धूप से जल रहे हैं। इस दृश्य का सिद्धार्थ के कोमल मन पर गहरा प्रभाव पड़ा। उनके मन में यह प्रश्न कौंधा कि मजदूर मेहनत करे और मालिक उसकी मजदूरी पर गुलछर्रे उड़ायें, यह कैसे ठीक हो सकता है? एक आदमी दूसरे आदमी का शोषण करे, क्या इसे ठीक कहा जायेगा?

बुद्धत्व प्राप्ति के ग्यारहवें वर्ष में गौतम बुद्ध मगध में थे। एक समय भगवान् मगध के दक्षिणागिरि में एकनाला नामक ब्राह्मणों के ग्राम में विहार कर रहे थे। उस समय कासिभारद्वाज ब्राह्मण के पाँच सौ हल बोने के समय जोताई के कार्य में लगे हुए थे। तब भगवान् पूर्वान्ह समय में पहन, पात्र और चीवर ले जहाँ कासिभारद्वाज का कार्यस्थान था, वहाँ गये, उस समय कासिभारद्वाज ब्राह्मण के यहाँ भोजन परसा जा रहा था, कासिभारद्वाज ब्राह्मण ने भगवान् को खड़ा देखा। देखकर भगवान् से कहा, ''हे श्रमण, मैं जोतता और बोता हूँ, जोत और बोकर खाता हूँ। हे श्रमण, तुम भी जोतो और बोओ, जोत और बोकर खाओ।''

भगवान् बुद्ध ने कहा, ''ब्राह्मण, मैं भी जोतता और बोता हूँ, जोत और बोकर खाता हूँ।''

''हम लोग आप गौतम के जुआठ, हल, फार, छेकुनी अथवा बैलों को नहीं देखते हैं, फिर भी आप गौतम ऐसा कह रहे हैं। ब्राह्मण मैं भी जोतता और बोता हूँ, जोत और बोकर खाता हूँ।''

''आप अपने को कृषक बतलाते हैं, किन्तु आपकी कृषि को हम नहीं देख रहे हैं। हम पूछने वालों को अपनी कृषि बतलाइये, जिससे कि हम लोग आपकी कृषि को जानें।''

भगवान् बुद्ध बोले, ''श्रद्धा मेरा बीज है, तप वृष्टि है, प्रज्ञा मेरी जुआठ और हल है, लज्जा हरीप (हल का दण्ड) है, मन नधना है, स्मृति मेरा फाल और छेकुनी है। शरीर से संयत हूँ, वचन से संयत हूँ, भोजन और पेट के प्रति संयत हूँ। मैं सत्य की निराई करता हूँ। अर्हत्व की प्राप्ति ही मेरा फसल काटना है। मेरा वीर्य बैल है और निर्वाण की गाड़ी है। वह बिना रुके चलती है और वहाँ चली जा रही है जहाँ जाकर शोक नहीं करना होता। इस प्रकार की गई कृषि अमृतफलदायी होती है। इस कृषि को करके मनुष्य सारे दुःखों से मुक्त हो जाता है।''

तब, कासिभारद्वाज ब्राह्मण एक बहुत बड़ी थाली में खीर परोस कर भगवान् के पास लाया और खीर खाने का आग्रह करने लगा। लेकिन भगवान् ने कहा, **''गाथाभिगीतं मे अभोजनेय्यं, संपस्सतं ब्राह्मण नेस धम्मो। गाथाभिगीतं पनुदन्ति बुद्धा, धम्मे सति ब्राह्मण बुत्तिरसा।।''** अर्थात् धर्मोपदेश करने से प्राप्त भोजन मेरे लिए अभोज्य है। ब्राह्मण, भली प्रकार जानकारों का यह नियम नहीं है। बुद्ध धर्मोपदेश से प्राप्त भोजन को त्याग देते हैं। ब्राह्मण, धर्म के विद्यमान रहते यह रीति है।

ज्ञानी, महर्षि, क्षीणाश्रव और चंचलता–रहित मेरे लिए दूसरे अन्न और पेय को लाओ। पुण्य को चाहने वाले के लिए यह उत्तम क्षेत्र होता है। इस प्रकार भगवान् बुद्ध ने मानसिक और शारीरिक दोनों के श्रम को बराबर महत्त्व दिया है।

प्रेम और सौहार्द्र का महत्त्व

गौतम बुद्ध एक बार श्रावस्ती में अनाथ पिण्डक जेतवनाराम में विहार कर रहे थे। एक दिन कोसल नरेश प्रसेनजित ने पूछा, ''भगवान् सुना है कि आप प्रेम करने को मना करते हैं। आप कहते हैं कि प्रेम से दुःख उत्पन्न होता है और प्रेम से भय, जो प्रेम से मुक्त है, उसे शोक नहीं, भय कहाँ से होगा। भगवन् तो क्या प्रेम के बिना जीवन सूना नहीं हो जायेगा?''

बुद्ध ने कहा, ''प्रेम कई तरह के होते हैं, प्रेम के स्वभाव को जानिये। प्रेम जीवन में बहुत जरूरी है लेकिन प्रेम कामवासना के वशीभूत होकर, आकर्षण, भेदभाव और पूर्वाग्रहों पर आधारित नहीं होना चाहिए। प्रेम मैत्री और करुणा पर आधारित होना चाहिए। साधारणतया लगाव या पूर्वाग्रह के कारण ही लोग स्वयं भी दुःखी होते हैं तथा दूसरों को भी दुःखी करते हैं। राजन्, सभी लोग जिस प्रेम के भूखे होते हैं, वह है मैत्री और करुणा। मैत्री ऐसा प्रेम है जो दूसरों को भी हर्षित कर सकता है। करुणा ऐसा प्रेम है जिससे दूसरों के दुःख दूर करना सम्भव होता है। मैत्री और करुणा को किसी प्रतिफल की अपेक्षा नहीं होती। प्रेमपूर्ण मैत्री और करुणा अपने माता–पिता, पति या पत्नी, बच्चों, सम्बन्धियों, जाति के सदस्यों या देश के लोगों तक ही सीमित नहीं होती। इसमें मैं और मेरे का कोई भेद नहीं होता। जब किसी प्रकार का भेदभाव नहीं होता तो तदनुरूप कोई लगाव भी नहीं होता। इससे कोई दुःख या निराशा नहीं होती। मैत्री और करुणा के बिना जीवन अर्थहीन और खोखला होता है। मैत्री और करुणा से जीवन शान्ति, उल्लास और संतोष से भर जाता है। आप एक देश के राजा हैं, यदि आप प्रेमपूर्ण मैत्री और करुणा का भाव अपनायेंगे तो आपके समस्त प्रजाजनों को लाभ होगा।''

भगवान् बुद्ध ने कहा कि प्रेम और स्वतंत्रता दोनों साथ–साथ चलते हैं। वही प्रेम सच्चा प्रेम है जिसमें दोनों प्रेमियों को स्वतंत्रता हो। बगैर स्वतंत्रता के प्रेम जेलखाने की कैद जैसा हो जाता है। उन्होंने प्रसेनजित से पूछा कि क्या उस बूढ़ी औरत की कहानी सुनी है जिसने अपने ही बेटे को जहर दे दिया।

उत्पलवर्णा ने अपनी जीवनगाथा बताई कि सोलह वर्ष की आयु में विवाह होने के बाद उसके ससुर मर गये और उसकी सास अपने पुत्र से ही शरीर सम्पर्क रखने लगी। उत्पलवर्णा ने एक पुत्री को जन्म दिया किन्तु अपनी सास और पति के सम्बन्धों से तंग आकर पुत्री को छोड़कर घर से भाग गयी। कुछ सालों बाद उसने एक व्यापारी से विवाह कर लिया। उसे पता चला कि उसका पति भी एक रखैल को रखे हुए है। गुप्त रूप से खोजबीन करने पर ज्ञात हुआ कि वह रखैल और कोई नहीं, बल्कि उसकी अपनी वह बेटी थी जिसे वह वर्षों पहले छोड़कर भाग आई थी। उसका कष्ट और कटुता इतनी तीव्र थी कि वह समस्त संसार से ही घृणा करने लगी। न वह किसी को प्रेम करती थी और न ही किसी का

भरोसा। वह नर्तकी बन गई थी। लेकिन भिक्खुणी बनने पर वह धम्म मार्ग पर आरूढ़ हुई और हृदय से राग–द्वेष पूरी तरह निकाल कर अर्हत पद को प्राप्त हुई।

भगवान् बुद्ध के अनुसार सहृदयता और प्रेम एक ही हैं। सहृदयता के बिना प्रेम हो ही नहीं सकता। प्रत्येक प्राणी की प्रकृति उसकी भौतिक–रचना, भावनात्मक और सामाजिक स्थितियों के अनुरूप निर्मित होती है। इस तथ्य को समझ लेने पर वह निर्दयतापूर्ण व्यवहार करने वाले के प्रति भी घृणा नहीं कर सकता। सहृदयता से करुणा और प्रेम के भावों का उदय होता है जिससे व्यक्ति सद्कर्मों की ओर प्रवृत्त होता है। प्रेम करने के लिए पूर्ण सत्य समझ लेने की आवश्यकता होती है इसलिए मुक्ति की कुंजी सहृदयतापूर्ण ज्ञान है। भगवान् बुद्ध ने कहा कि प्रेम के स्वभाव को समझो। इस दुनिया में कुछ भी हमेशा एक जैसा नहीं रहता। परिवर्तन ही संसार का नियम है।

विश्वशान्ति

दुनिया में अगर अशान्ति, हिंसा और आतंकवाद है तो इसका मतलब यह है कि कुछ लोगों के दिल और दिमाग में भय, असुरक्षा, क्रोध और नफरत भरी हुई है। सम्बन्धित सरकारें एवं सरकारी तंत्र प्रभावित लोगों के शिकवे–शिकायत नहीं दूर कर पा रहे हैं और उनके अन्दर विश्वास नहीं पैदा कर पा रहे हैं।

- यदि लोग भूख से मर रहे हैं तो इसका कारण है कि उनके पास अनाज खरीदने के लिए पैसा नहीं है।
- यदि लोग गरीब हैं तो वे बेरोजगार हैं और उनके पास आमदनी के साधन नहीं है या जितना कमा रहे हैं उससे ज्यादा खर्च कर रहे हैं या फिर उनका कोई शोषण कर रहा है।
- यदि लोग बीमार हैं तो या तो अस्वास्थ्यकर परिस्थितियों में रहने के लिए विवश हैं या भरपेट भोजन नहीं मिल रहा है, या वे शारीरिक मेहनत नहीं कर रहे हैं या फिर अपनी दिनचर्या प्रकृति के नियमों के विपरीत जी रहे हैं, या फिर किसी रोग के रोगी हैं और इलाज नहीं करवा रहे हैं।

बिना कारण के इस दुनिया में कुछ भी नहीं होता। इसलिए बुद्ध ने परिच्चसमुप्पाद की अपनी शिक्षाओं का आधार बनाया। (परिच्चसमुप्पाद पाली का वह शब्द है जिसको कारण और प्रभाव का नियम भी कहते हैं।)

भगवान् बुद्ध ने बताया कि मन और शरीर निरन्तर एक दूसरे से प्रतिक्रिया करके एक दूसरे को प्रभावित करते हैं और प्रभावित होते रहते हैं। मन और शरीर का गहरा सम्बन्ध है, इन्द्रियों का विषयों से टकराव होता ही रहता है जिससे शरीर में सुखद, दुःखद और न सुखद, न दुःखद संवेदनायें उत्पन्न होती रहती हैं। सुखद संवेदनाओं के प्रति राग एवं दुःखद संवेदनाओं के प्रति द्वेष निरन्तर जगता ही रहता है। इस प्रकार अचेतन मन लगातार राग–द्वेष जगाता रहता है और राग–द्वेष का संसार बनाता रहता है।

इन्द्रियों का जब अपने विषयों से टकराव होता है, जैसे कि आँख का रूप से, कान का ध्वनि से, जीभ का स्वाद से, त्वचा का स्पर्श से और मन का विचार से तो मानस का पहला हिस्सा, जिसे उन दिनों की भाषा में 'विज्ञान' कहते थे, यह सूचित करता है कि कुछ टकराव हुआ और ऐसा होते ही पूरे शरीर में एक तरंग प्रवाहित होती है, जैसे कि कांसे के बर्तन पर चोट करने से होता है। ऐसा होते ही मानस का दूसरा हिस्सा उन दिनों की भाषा में 'संज्ञा' कहा जाता था। इस टकराव का संग्रहीत जानकारियों के आधार पर मूल्यांकन करके फैसला सुनाता है कि जो भी टकराव हुआ वह सुखद है या दुःखद, या न सुखद है और न दुःखद। उदाहरण स्वरूप

जिस भाषा को हम अच्छे से जानते और समझते हैं, उस भाषा में यदि कोई हमारी प्रशंसा करे, कोई सुखद समाचार दे तो हम प्रसन्न होते हैं। हमारे अन्दर सुखद तरंगे प्रवाहित होने लगती हैं और यदि गाली दे, बुराई करे, अपमान करे या कोई ऐसी बात बोले जो हमें अच्छी नहीं लगती तो हमें बुरा लगता है और दुःखद तरंगों का प्रवाह होता है। लेकिन हमारी वही प्रशंसा या बुराई किसी ऐसी भाषा में की जाय, जिसे हम नहीं समझते हैं तो उसके प्रति हमारी प्रतिक्रिया नहीं होती, क्योंकि 'संज्ञा' तो मूल्यांकन संग्रहीत सूचनाओं के आधार पर करती है और उस भाषा का ज्ञान न होने पर 'संज्ञा' फैसला नहीं कर पाती।

सामाजिक क्रान्ति

शील, सदाचार से अपने साथ–साथ दूसरे लोगों का भी कल्याण अनिवार्य रूप से होता ही है। इसीलिए यदि मनुष्य का कल्याण हो रहा है तो समाज का कल्याण होगा ही। चित्त में ब्रह्मवृत्तियाँ जागेंगी हीं, समाधि और प्रज्ञा बलवती होगी तो दूसरों के प्रति मंगलमैत्री, करुणा और मुदिता की भावना जागेही ही। बैर–वैमनस्यता मिटेगा तो समाज में शांति बढ़ेगी ही। चित्त की सजगता और जागरुकता से हम अपने चारों ओर घटने वाली घटनाओं के प्रति संवेदनशील बनते हैं और सामयिक आर्थिक समस्यायें, गरीबी, भुखमरी, रोगों से लड़ने में लोगों की मदद करने के लिए अधिक तत्पर होते हैं। व्यक्ति की कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं होती। उसका कोई स्वतंत्र अस्तित्त्व नहीं होता। वह बहुत सी चीजों के लिए दूसरों पर निर्भर करता है। व्यक्ति और समाज की पारस्परिक निर्भरता अपनी और दूसरों की पारस्परिक निर्भरता को पटिच्चसमुप्पाद की मदद से समझा जा सकता है।

धार्मिक क्रांति

गौतम बुद्ध के पहले जो वर्णाश्रम व्यवस्था प्रचलन में थी, उसमें यह माना जाता था कि जीवन के पहले पच्चीस वर्ष ब्रह्मचर्य, छब्बीस से पचास वर्ष गृहस्थ, इक्यावन से पचहत्तर तक वानप्रस्थ और उसके बाद सन्यास लेना चाहिए। बुद्ध ने इसे इस प्रकार बताया कि अगर सही मायनों में सन्यास लेना है और सही मायनों में मनोविकारों से मुक्त होना है तो शील–सदाचार का पालन नवयुवक से और जवानी के दिनों से ही करना पड़ेगा। उन्होंने कहा कि जो लोग इस मार्ग पर चलकर पूर्ण मुक्त अवस्था तक पहुँचना चाहते हैं, उन्हें पचहत्तर वर्ष की आयु तक इंतजार करने की जरूरत नहीं है। उन्होंने समझाया कि शारीरिक शक्ति एक ही है, चाहे उसे काम–वासनाओं से नष्ट करो या अपने मनोविकारों को दूर करने में उसका सदुपयोग करो। जो आदतें हम जवानी में डालते हैं, बुढ़ापे तक वह कायम रहती हैं। बुढ़ापे में हमारी शक्ति तो क्षीण हो जाती है लेकिन वासनाओं के मनोविकार बढ़ते ही जाते हैं इसलिए जो अपनी जवानी के दिनों से ही धम्म का जीवन शुरु कर देते हैं, उनकी तुलना बादलों से मुक्त चंद्रमा के समान होती है जो पूरी दुनिया को उजाले से भर देते हैं।

बुद्ध की शिक्षायें लोगों के दिल और दिमाग को छू जाती थीं जिससे हजारों पुरुष और महिलायें भिक्खु और भिक्खुणी बने और करोड़ों की संख्या में गृहस्थ लोग बुद्ध धम्म के अनुयायी बने। इस तरह बुद्ध ने मानव इतिहास में पहली बार इतनी बड़ी धार्मिक क्रान्ति कर दिखाई जिसमें कहीं पर भी और किसी भी प्रकार का बल, लोभ, लालच का इस्तेमाल नहीं किया गया था। लोग अपनी मर्जी से चुम्बक की तरह खिंचे चले आते थे। बुद्ध ने कहा कि वे भी हम लोगों की तरह एक सामान्य रीति से जन्मे, एक सामान्य बच्चे की तरह बचपन बिताते हुए, बच्चे से नवयुवक हुए। स्कूल गये, विवाह किया और तेरह साल तक गृहस्थ जीवन बिताया। एक बच्चे के पिता बने और उनतीस साल की परिपक्व अवस्था में

गृहत्याग किया। उनका पूरा जीवन ऐतिहासिक है और ऐतिहासिक दस्तावेजों से प्रमाणित है। उनके जीवन की किसी घटना में कहीं कोई पौराणिकता, असामान्यता और कल्पना नहीं है। उन्होंने यह प्रमाणित कर दिया कि कैसे एक सामान्य व्यक्ति आर्य आष्टांगिक मार्ग पर चलकर, शील–समाधि–प्रज्ञा का जीवन जीकर मुक्त हो सकता है और मानव जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य निर्वाण को प्राप्त कर सकता है।

भगवान् बुद्ध की कथनी और करनी में कभी कोई अंतर नहीं रहा। उन्होंने वही सिखाया जैसा जीवन उन्होंने खुद जिया। इसीलिए उनको 'यथार्थवादी तथाकारी, तथाकारी यथार्थवादी' कहा जाता है। दुनिया में ऐसे बहुत से धर्मशिक्षक और प्रचारक हुए जिन्होंने बातें तो बहुत आदर्श की कही हैं लेकिन उन आदर्शों को स्वयं के जीवन में लागू नहीं किया। लेकिन बुद्ध की कथनी और करनी में कभी कोई अंतर नहीं रहा। उनके सम्पूर्ण जीवन में कभी कोई रहस्य और शंका वाली बात नहीं रही। गौतम बुद्ध से सम्बन्धित सारी घटनायें उनका जन्म, बचपन, शिक्षा, गृहस्थ जीवन, महाभिनिष्क्रमण, बुद्धत्व प्राप्ति, उपदेश, महापरिनिर्वाण सभी कुछ ऐतिहासिक दस्तावेजों से प्रमाणित है। भगवान् बुद्ध पैंतालिस वर्षों तक लगातार गाँव–गाँव, कस्बे–कस्बे, शहर–शहर जाकर धर्मदेशना करते रहे और अनंत करुणा और मैत्री के साथ किसी भी प्रकार के भेदभाव के बगैर सबको मुक्त हृदय से धम्म बांटते रहे। भारतवर्ष में पहली बार स्त्रियों और वैदिक व्यवस्था में नीच समझे जाने वाले शोषित और दबे–कुचले लोगों को बराबरी का हक मिला।

आज जब दुनिया में असमानता बढ़ रही है, एक नये किस्म का आर्थिक साम्राज्यवाद पनप रहा है और शक्तिशाली देश कमजोर देशों के ऊपर धौंस जमा रहे हैं, राजनेता नियम और कानूनों को धता बता रहे हैं। लोगों के आपसी रिश्तों में तनाव आ रहा है, संयुक्त परिवार टूट रहे हैं, बूढ़े और कमजोर लोगों के प्रति उपेक्षा भाव बढ़ रहा है, ऐसे में भगवान् बुद्ध की शिक्षाएँ पहले से भी ज्यादा प्रासंगिक हो गयी हैं।

बुद्ध धर्म का सार

धम्म पालि भाषा का शब्द है जिसका अर्थ होता है प्रकृति के नियमों के अनुसार जीवन जीना। जो इंसान प्रकृति के नियमों के अनुसार जीवनयापन करेगा, स्वस्थ और प्रसन्न रहेगा। जो प्रकृति के नियमों के विपरीत जीवनयापन करेगा, उसका व्याकुल, अशांत, अस्वस्थ रहना स्वाभाविक है। प्रकृति के नियमों के अनुसार जीवन जीना शील और सदाचार का जीवन कहलाता है और इसके विपरीत जीवन जीना दुराचार का जीवन कहलाता है। प्रकृति कुशल कर्मों के लिए मन की शांति देकर पुरस्कृत करती है और अकुशल कर्मों के लिए हमको अशान्त कर दण्डित करती है। मन, वाणी और शरीर द्वारा किये गये काम जिससे स्वयं का या दूसरों को दुःख हो, अकुशल कर्म या पाप कर्म कहलाते हैं, मन–वाणी और शरीर द्वारा किये गये ऐसे कार्य जिनसे स्वयं या दूसरों को शान्ति व खुशी मिलती हो, फायदा होता हो, कुशल या पुण्य कर्म कहलाते हैं।

बुद्ध का अर्थ है परम सत्य का साक्षात्कार करने वाला, बोधि या बुद्धत्व अर्थात् उच्चतम ज्ञान प्राप्त करना। चूँकि किसी की कृपा के भरोसे न बैठकर स्वयं ही सच्चाई के सहारे परम सत्य को पहुँचना होता है इसलिए बुद्ध को 'तथागत' भी कहा जाता है। तथागत का संधि–विच्छेद करते हैं तो तथ्य–आगत अर्थात् तथ्यता अर्थात् सच्चाई के रास्ते आना–जाना। बुद्धत्व प्राप्त करने के बाद लोगों के प्रति करुणा करे बुद्ध जो भी रास्ता बताते हैं, वह धम्म का मार्ग कहलाता है और यह मार्ग होता है दान, शील, समाधि और प्रज्ञा का।

शील–सदाचार का जीवन, मन को वश में रखना और भावनामयी प्रज्ञा जगाकर स्वयं निर्वाण सुख प्राप्त करना और दूसरों को निर्वाण सुख

प्राप्त करने में सहायता करना, स्वयं भी खुश रहते हुए दूसरों की खुशी के लिए कोशिश करते रहना, धम्म का सार है।

मानव जीवन का कल्याण कैसे हो, इंसान सुखी और प्रसन्न कैसे रहे, समाज में समानता, भाईचारा, प्रेम और सौहार्द, शान्ति और खुशहाली कैसे रहे, बुद्ध धम्म का यही उद्देश्य है। बुद्ध की सभी शिक्षाओं में इंसान को प्रमुखता दी गयी है इसलिए कहा जाता है कि धम्म मनुष्य के लिए है, मनुष्य धम्म के लिए नहीं है। बुद्ध ने देखा कि लोग किसी न किसी कारण से दुःखी हैं। चूँकि लोग दुःखी हैं इसलिए समाज और देश भी दुःखी है। इसलिए लोगों के दुःख दूर करके उनको खुशहाल बनाया जाय। जब लोग खुश होंगे तो समाज भी खुशमय होगा। प्रसन्न व्यक्ति ही प्रसन्न समाज का निर्माण करते हैं, व्यक्ति समाज की इकाई है। जब तक व्यक्ति प्रसन्न नहीं होगा, समाज, देश या विश्व प्रसन्न नहीं हो सकता, क्योंकि समाज की इकाई तो व्यक्ति ही है इसलिए बुद्ध ने व्यक्ति को ही अपनी शिक्षाओं का केन्द्र बिन्दु बनाया।

बुद्ध धम्म के केन्द्र में मनुष्य और उसका कल्याण है जिससे समतामूलक समाज की स्थापना हो। मनुष्य अपने दुःखों से छुटकारा पाकर ही प्रसन्न हो सकता है और जब मनुष्य प्रसन्न होगा तभी समाज प्रसन्न होगा। बुद्ध धम्म में न कोई ऊँचा है न कोई नीचा। सभी धर्मावम्बियों को बराबरी का दर्जा प्राप्त है। भगवान् बुद्ध ने परिस्थितिवर्श डाकू बने अंगुलिमान, नरगवधू आम्रपाली, नाई उपाली, राजा प्रसेनजित, अति धनवान व्यापारी अनाथपिंडक, सम्राट शुद्धोदन, पुत्र राहुल सभी को दीक्षा देकर सभी को बराबरी का दर्जा दिया।

बुद्ध धम्म पूर्णरूपेण वैज्ञानिक धम्म

बुद्ध धम्म पूर्णरूपेण वैज्ञानिक धम्म है जिसमें रूढ़िवाद और अंधविश्वास के लिए कोई स्थान नहीं है। जिस प्रकार से वैज्ञानिक प्रयोग करके विश्लेषण और विभाजन करके किसी भी प्रक्रिया की तह तक जाकर निष्कर्ष पर पहुँचते हैं उसी प्रकार भगवान् बुद्ध ने प्रयोग करके और जीव जगत की घटनाओं का और उसमें घटित होने वाली सच्चाइयों का विभाजन–विश्लेषण किया। अंतर केवल इतना है कि वैज्ञानिक यह प्रयोग प्रयोगशालाओं में करते हैं जबकि भगवान् बुद्ध ने सारे प्रयोग अपने शरीर, चित्त और प्रकृति की प्रयोगशाला में किये। कैसा अजीब संयोग है कि राजकुमार सिद्धार्थ ने एक महारानी की कोख में जन्म लिया लेकिन राजमहल में नहीं एक पेड़ के नीचे और खुली प्रकृति में छः सालों तक उन्होंने कंदराओं–गुफाओं, बियाबान जंगलों में, पहाड़ियों, आश्रमों और विहारों में कठिन से कठिनतम तपस्या– ध्यान साधना की। लेकिन बुद्धत्व प्राप्त हुआ एक पेड़ के नीचे, खुली प्रकृति में। पैंतालिस वर्षों के लम्बे समय तक धम्म का उपदेश देते हुए भव्य विहारों, आश्रमों और निवास स्थानों में रहे लेकिन जब महापरिनिर्वाण प्राप्त किया तो वह भी एक पेड़ के नीचे खुली प्रकृति में। इसलिए भगवान् बुद्ध प्रकृति के नियमों, निसर्ग की नियामता को, प्रकृति के रहस्य को खूब अच्छी तरह समझते थे।

भगवान् बुद्ध ने कहा कि जितनी देर में मैं चुटकी बजाता हूँ उतनी देर में यह परिमाणु कोटिशहस्त्र बार उत्पन्न होते हैं और नष्ट हो जाते हैं। अमेरिका की वर्कले युनिवर्सिटी के प्रो0 अल्वरिस ने वव्वल चैंबर बनाकर परमाणुओं के उत्पन्न होने और नष्ट होने की गति के बारे में प्रयोग किया और इस नतीजे पर पहुँचे कि एक सेकेण्ड में 1 के आगे 23 शून्य लगाये जायें, इतनी बार एक सेकेंड में परमाणु उत्पन्न होते हैं और नष्ट होते हैं। लेकिन चूँकि यह गति इतनी तेज होती है कि ऊपर से पदार्थ हमें ठोस दिखाई देता है। भगवान् बुद्ध परमाणु के उत्पन्न होने और नष्ट होने के स्वभाव और उसकी गति को ढाई हजार साल पहले ही जान चुके थे।

आज तक के इतिहास में बौद्ध अनुयायियों ने कभी भी विज्ञान का विरोध नहीं किया बल्कि दुनिया के दुःख–दर्द को दूर करने के लिए समाज में नैतिक मूल्यों का विकास करने के लिए, समाज में मैत्री, करुणा और मुदिता के गुणों को बढ़ाने के लिए वैज्ञानिक दृष्टिकोण को ही अपनाया है। भगवान् बुद्ध ने अनेकों बार अपने अनुयायियों को वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाने को कहा है। कालामसुत्त में कालामों को उपदेश देते हुए भगवान् बुद्ध ने कहा, **''किसी बात को इसलिए मत मानो कि ऐसा सदियों से होता आया है। किसी बात को इसलिए भी मत मानो कि बड़े लोग या विद्वान् लोग ऐसा कहते हैं, किसी बात को इसलिए भी मत मानो कि ग्रन्थों में ऐसा लिखा हुआ है, प्रत्येक बात को अपनी अनुभूति से परखने के बाद ही मानना चाहिए।''**

बुद्ध की शिक्षायें उनके स्वयं के प्रत्यक्ष अनुभव का परिणाम हैं। दीघनख (संजय) को उपदेश देते हुए भगवान् बुद्ध ने कहा कि उनकी शिक्षायें न तो कोई दर्शनशास्त्र हैं, न ही सिद्धान्त हैं, न ही किसी आकाशवाणी से, न ही किसी स्वप्न से और न ही किसी विश्वास या मान्यता से। उन्होंने कहा, ''मेरी शिक्षायें न तो कोई सिद्धांत हैं और न कोई दर्शन। यह न तो किसी वाद–विवाद के निष्कर्ष हैं और न विभिन्न दर्शनों के समान मानसिक मान्यतायें, जिनके अनुसार हम दावा करते हैं कि अग्नि, जल, वायु, पृथ्वी और आत्मा से सृष्टि का सृजन ही आधारभूत सत्य है अथवा सृष्टि का अंत होता है, या वह अनन्त है अथवा सृष्टि नित्य है या अनित्य है। इस प्रकार की ध्रुवसत्य सम्बन्धी मानसिक मान्यतायें और विचार–विमर्शजन्य विचारधारायें उन चींटियों के समान हैं जो कटोरी के किनारे की ही सतत प्ररिक्रमा करती रहती हैं किन्तु पहुँचती कहीं नहीं हैं। कोई भी पदार्थ किसी एक मूल स्रोत से उत्पन्न नहीं होता। मैंने इस सत्य का प्रत्यक्ष अनुभव किया है जिसे आप भी अनुभव कर सकते हैं। मेरा उद्देश्य सृष्टि–रचना के विषय में बताना नहीं है वरन् अन्य लोगों को प्रत्यक्ष अनुभूति करने में सहायता करना है। शब्दों से उस परम सत्य का वर्णन नहीं किया जा सकता। केवल प्रत्यक्ष अनुभव के द्वारा ही हम उस परम सत्य का साक्षात्कार कर सकते हैं।''

भगवान् बुद्ध ने भिक्खुओं को यहाँ तक कहा है कि अगर कोई उनकी या उनके धम्म की आलोचना करता है तो उनको दुःखी होने की या उसके प्रति वैमनस्य जगाने की आवश्यकता नहीं है। इससे स्वयं की ही हानि होगी। इसी तरह अगर कोई प्रशंसा करता है तो उससे खुश होने की जरूरत नहीं है बल्कि हमेशा ही सच्चाई का सामना करते हुए धम्म मार्ग पर चलना चाहिए। पटिच्चसमुप्पाद द्वारा जो कार्य और कारण की व्याख्या भगवान् बुद्ध ने की है, वह आज के वैज्ञानिक सिद्धान्त से पूरी तरह मेल खाती है।

भगवान् बुद्ध ने विपस्सना करते–करते अणुओं–परमाणुओं का विच्छेदन, विश्लेषण–विभाजन करते–करते देखा कि लोग बाहरी कारणों जैसे– गरीबी, भुखमरी, असमानता, ऊँच–नीच, बीमारी, बुढ़ापा, मृत्यु, प्राकृतिक आपदाओं से तो दुःखी हैं ही, मनचाहा न होने पर, अनचाहा होने पर, प्रिय लोगों से बिछुड़ने अप्रिय लोगों से मिलाप जैसी स्थितियों से भी दुःखी होते हें। उन्होनें देखा कि जब हमें कुछ अच्छा लगता है तब हमारी शरीर पर सुखद संवेदनायें प्रकट होती है और जब कुछ बुरा लगता है या अच्छा नहीं लगता है तो शरीर पर दुःखद संवेदनायें पैदा होती हैं।

भगवान् बुद्ध ने कहा कि विपस्सना करते–करते शरीर को सूक्ष्म से सूक्ष्मतर स्तर पर विभाजन–विश्लेषण करते हुए, अणुओ–परमाणुओं का निरीक्षण–परीक्षण करते हुए स्वयं के प्रत्यक्ष अनुभव से उन्होंने जाना है कि संसार में कुछ भी स्थिर नहीं है, सब कुछ परिवर्तनशील है जो हर पल बदल रहा है इसलिए सब कुछ अनित्य है। ऊपर से ठोस दिखने वाले इस शरीर और इसके

साथ जुड़े चित्त में और इन दोनों के मिलने से चलने वाली जीवनधारा में कहीं पर कुछ भी 'मैं' नामक चीज नहीं है और न ही इसमें जीवनधारा का कोई अस्तित्व है, पूरे अस्तित्व में किसी का भी पृथक् और स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। सब कुछ प्रत्येक प्राणी–वस्तु, घटना बहुत सी बातों पर, चीजों पर निर्भर है और सभी कुछ किसी न किसी कारण से उत्पन्न होता है, विकसित होता है और देखते–देखते किसी नये रूप में परिवर्तित हो जाता है। कुछ भी (बिना किसी अपवाद के), किसी एक मूल स्रोत से उत्पन्न नहीं हुआ है। एक बीज जब जमीन में बोया जाता है तो वह जल, मिट्टी हवा की मिली–जुली मदद से ही अंकुरित हो पाता है और सूर्यप्रकाश की मदद से बड़ा होता है। इस तरह पेड़ की एक पत्ती में पूरे ब्रह्माण्ड का प्रतिनिधित्व होता है जिसमें जल, वायु, पृथ्वी, अग्नि सभी कुछ समाया हुआ है। गौतम बुद्ध का उद्देश्य ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति को समझाना नहीं था, बल्कि यह था कि मनुष्य का अपना अकेले पर कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है, वह जीने के लिए पर्यावरण पर, पेड़–पौधों पर, जीव– जंतुओं पर और समाज पर निर्भर है। अगर वह शील–सदाचार का जीवन जीता है तो अपनी सुख और शान्ति से समाज के अन्य प्राणियों की सुख–शान्ति में मदद करता है, प्रज्ञा जगाता है, दान–शील और करुणावान बनता है तो दूसरे लोगों के प्रति मंगल मैत्री जगाता है, करुणा जगाता है जिससे समाज में जो भी लोग जिस किसी कारण से दुःखी हैं, उनका दुःख दूर करने की कोशिश करता है।

बातों से और शब्दों से, सत्य को जो नित्य है, शाश्वत है, अमृत है, बयान नहीं किया जा सकता है। इसे केवल स्वयं के प्रत्यक्ष अनुभव से ही जाना जा सकता है। इससे लोगों को जीवन, घटनाओं, वस्तुओं के सही और वास्तविक स्वभाव, जो परिवर्तनशील हैं, हर पल, बदलता जा रहा है, को समझने में मदद मिलती है।

भगवान् बुद्ध ने बताया कि हमें रोज सोने के पहले अपने जीवन और चित्त के बारे में कुछ देर विचार करना चाहिए कि हमारे अंदर कौन–कौन से अच्छे गुण हैं और उन सद्गुणों को बढ़ाने की कोशिश करते रहना चाहिए। कौन–कौन से सद्गुण हममें नहीं है, जो नहीं हैं, उन सद्गुणों को अपने अंदर लाने का प्रयास करें। हमारे अंदर कौन से दुर्गुण हैं, उनकी पहचान कर उनको दूर करने की कोशिश करें, जो दुर्गुण हमारे अन्दर नहीं हैं उनको अपने अन्दर न आने देने का प्रयास करें।

भगवान् बुद्ध ने बताया कि संसार में चार किस्म के लोग हैं। पहले जो अंधकार से अंधकार की ओर जा रहे हैं। दूसरे जो अंधकार से प्रकाश की ओर जा रहे हैं। तीसरे जो प्रकाश से अंधकार की ओर जा रहे हैं और चौथे जो प्रकाश से प्रकाश की ओर जा रहे हैं। पहली श्रेणी में वो लोग आते हैं जो गरीब परिवार में या विकलांगता के साथ अथवा दुराचारी परिवार में पैदा हुए जहाँ दुःख ही दुःख है। जीवन दुःखों और कष्टों के साथ गुजर रहा है, लेकिन आदतें ऐसी डाल रहे हैं, जैसे–जुआ, बीड़ी–सिगरेट, शराब–पान–मसाला का सेवन, शील–सदाचार का नामोनिशान नहीं, बात–बात पर गुस्सा करते हैं। हर वक्त मारपीट करने पर आमादा, बोली में कड़ुवाहट इतनी कि लगता है काट खायेंगे। गप्प और झूठ में मशगूल, ऐसे लोगों का अभी तक का जीवन तो अंधकारमय था ही, आगे का जीवन भी अंधकारमय ही होगा। दूसरी श्रेणी में ऐसे लोग आते हैं जिनका अभी तक का जीवन तो पहली श्रेणी के लोगों की तरह दुःखमय था लेकिन उसके बावजूद वो अपना जीवन सुधारने की कोशिश करते हैं। विद्यार्थी हैं तो खूब मन लगाकर पढ़ाई करते हैं। शील सदाचार का जीवन जीते हैं, कोई भी फिजूलखर्ची नहीं करते। ऐसे लोगों का शेष जीवन सुखमय होगा या सुखमय होने की सम्भावना तो अवश्य होगी। तीसरी श्रेणी में वो लोग आते हैं जिनका अच्छे

माँ–बाप के घर, सुखी परिवार में जन्म हुआ होता है या अपनी मेहनत से पढ़कर अच्छी नौकरियों में, व्यवसाय में आ गये और इस समय उनका जीवन सुखमय है लेकिन न अपने ज्ञान को बढ़ाने की कोशिश करते हे। न कुछ नया पढ़ते–लिखते हैं। शील सदाचार का जीवन न जीकर दुराचार करते हैं। केवल जो पहले कुशल कर्म किये थे, उसी का फल खा रहे हैं। ऐसे लोगों का भविष्य का जीवन दुःखमय ही होने वाला है। चौथी श्रेणी में वे लोग हैं जिनका वर्तमान जीवन तो सुखमय है ही, मेहनत करके दान–पुण्य करे, शील–सदाचार का जीवन जीकर अपनी, अपने घर–परिवार और समाज की सुख–शान्ति बढ़ाने में सहायक बनते हैं। ऐसे लोग अभी तो सुखी हैं ही, उनका आगे का जीवन भी सुखमय होगा।

भगवान् बुद्ध ने कहा कि हर इंसान को कोशिश यह करनी चाहिए कि वह अंधकार से प्रकाश की ओर या प्रकाश से प्रकाश की ओर जाये लेकिन प्रकाश से अंधकार की ओर या अंधकार से अंधकार की ओर बिल्कुल न जाये।

धम्म पद में कहा गया है शुभ कर्म करने वाला मनुष्य सदैव प्रसन्न रहता है। अपने शुभ कर्म को देखकर वह मुदित होता रहता है, प्रमुदित होता है। पापी मनुष्य हर जगह संतप्त रहता है। दुर्गति को प्राप्त हो और भी संतप्त होता है। जब तक पाप कर्म फल नहीं देता तब तक मूर्ख आदमी उसे शहद की तरह मीठा समझता है, लेकिन जब पाप–कर्म फल देता है, तब उसे दुःख होता है। पुण्य करने वाले को भी तब तक बुरा लगता है जब तक पुण्य फल नहीं देता। जब पुण्य फल देता है, तब उसे अच्छा लगता है।

शील–समाधि–प्रज्ञा ही बुद्ध धम्म का सार है। शील का पालन करते हुए सदाचारी जीवन जीना, *आनापान सति* द्वारा चित्त को एकाग्र और सूक्ष्म बनाकर, विपस्सना द्वारा *प्रज्ञा जगाकर* कोई भी व्यक्ति बुद्धत्व प्राप्त कर भगवान् बन सकता है। भगवान् का पालि भाषा में अर्थ है– **भग्ग रागो, भग्ग दोसो, भग्ग मोहो ति भगवा** अर्थात् जिसने अपने चित्त से राग, द्वेष और मोह को समूल नष्ट कर दिया वह भगवान् हो गया। भगवान् बुद्ध ने कहा है कि यह शील–समाधि–प्रज्ञा का रास्ता सभी के लिए खुला है। कोई भी व्यक्ति इस रास्ते पर चलकर वहाँ पहुँच सकता है जहाँ स्वयं भगवान् बुद्ध पहुँचे। लेकिन इसके लिए प्रत्येक इंसान को स्वयं चलना पड़ेगा। **तथागत** का अर्थ है तथता अर्थात् **सत्य के सहारे जिसने निर्वाण (परम सत्य) का साक्षात्कार किया हो, प्रत्येक व्यक्ति जो दुःख से छुटकारा पाकर निर्वाण सुख प्राप्त करना चाहता है, उसे स्वयं ही शील–समाधि–प्रज्ञा के मार्ग पर चलना पड़ेगा।** कोई दूसरा कृपा कर, अनुकम्पा कर, किसी का उद्धार नहीं कर सकता है। अधिक से अधिक कोई रास्ता बता सकता है, जैसा भगवान् बुद्ध ने बताया, लेकिन चलना स्वयं पड़ेगा। देवता, अर्हत पद, भगवान् यह सब चित्त की अवस्थायें हैं। चित्त ज्यों–ज्यों निर्मल होता जाता है, प्रेम, मुदिता, मैत्री, बंधुत्व और क्षमाशीलता की भावना बढ़ती जाती है और मनुष्य उत्तरोत्तर उन्नति करता जाता है।

शील और सदाचार, मानव समाज में प्रेम और बंधुत्व की आवश्यकता पर जोर देते हुए भगवान् बुद्ध ने बताया कि जिस तरह आग से आग नहीं बुझती वैसे ही बैर से बैर कभी शान्त नहीं होता। आग पानी से बुझती है उसी तरह बैर को प्रेम व मैत्री से मिटाया जा सकता है।

भगवान् बुद्ध ने बोधिसत्त्व बनने का सरल मार्ग दिखाया। इसके लिए भगवान् बुद्ध ने दस पारिमिताओं को पूर्ण करने पर बल दिया। जिसने परिमिताएँ पूर्ण करने का संकल्प किया है, बोधि चित्तग्रहण किया है और जो महाकरुणा से भरपूर होता है ऐसा साधक बोधिसत्त्व कहलाता है। इस प्रकार कोई भी व्यक्ति बोधिसत्त्व बन सकता है।

पारमिता का अर्थ है– पूर्णता। पारमिता पारमी शब्द से बना है। पारमी अर्थात् पार लगाने

वाली, सद्गुणों की पराकाष्ठा। ये पारमिताएँ इस प्रकार हैं:–

1. निष्क्रमण अर्थात् घर छोड़ना
2. अधिष्ठान अर्थात् दृढ़ निश्चय
3. दान अर्थात् बदले में प्राप्ति की कतई भावना नहीं रखने वाला दान
4. शील अर्थात् सदाचार
5. शान्ति अर्थात् कितना भी अपकार होते हुए चित्त की अकोपनता, सहिष्णुता,
6. वीर्य अर्थात् पुरुषार्थ, परिश्रम
7. ध्यान अर्थात् स्थूल सच्चाई से सूक्ष्मतम सच्चाई तक अपनी अनुभूति से जानना और निर्वाण के साक्षात्कार तक पहुँचना
8. प्रज्ञा अर्थात् यथाभूत ज्ञान दर्शन
9. मैत्री अर्थात् मैत्री करुणा, मुदिता का भाव पुष्ट करना
10. उपेक्षा अर्थात् सुख, दुःख में समता भाव

हम इस समय जो भी हैं, जैसे भी हैं, जहाँ भी हैं, अब तक किये गये कार्यों के कारण ही हैं। जो समय बीत गया, वह बीत गया। वह कभी वापस नहीं आयेगा। बीते हुए कल के बारे में सोचने से राग और द्वेष ही बढ़ते हैं। भविष्य जब भी आयेगा वर्तमान बनकर ही आयेगा इसलिए बुद्ध धम्म में भूत व भविष्य की कल्पना में न जीकर वर्तमान क्षण की सच्चाई में समता भाव से जीने पर बल दिया जाता है। वर्तमान की जो सच्चाई है, जैसी भी है उसे (यथाभूत) जानकर और स्वीकार कर ही उसमें बदलाव लाने की कोशिश की जा सकती है। भगवान् बुद्ध ने कहा कि तुम स्वयं ही अपने स्वामी हो। भला दूसरा कौन स्वामी हो सकता है? अपनी गति को, अपने मन को वश में रखो और उसे निर्मल से निर्मलतम करते रहो। भगवान् बुद्ध ने मन को प्रधान माना है। जैसा मन होगा, वैसा ही फल होगा। मन को प्रेरणा का मूल मानते हुए उन्होंने कहा कि जैसा सोचोगे वैसा बन जाओगे, इसलिए वैसा सोचो जैसा बनना है।

दुश्मन, दुश्मन की जितनी हानि करता है, कुमार्ग की ओर गया हुआ चित्त मनुष्य की उससे कहीं अधिक हानि करता है। न माता–पिता, न दूसरे रिश्तेदार, आदमी की उतनी भलाई करते हैं, जितनी भलाई सन्मार्ग की ओर गया हुआ चित्त करता है।

बुद्ध धम्म के अनुसार निसर्ग नियामता ही धम्म है अर्थात् प्रकृति के नियम के अनुसार आचरण करना। प्रकृति के नियम सार्वजनीन, सार्वकालिक और सार्वदेशिक होते हैं। प्रकृति नस्ल, वर्ण, रंग, रूप, लिंग, उम्र, हैसियत, स्थान आदि में भेदभाव नहीं करती। प्रकृति या निसर्ग के नियम जैसे शरीर के बाहर काम करते हैं ठीक उसी तरह शरीर के भीतर भी काम करते हैं। क्रोध आने पर, लालच, ईर्ष्या और वासना जागने पर हर प्राणी को व्याकुल होना पड़ता है चाहे वह किसी भी लिंग, जाति, वर्ग, धर्म का हो या किसी भी देश का हो, या किसी भी समय में हो, जो भी व्यक्ति प्रकृति के नियमों के अनुसार जीवनयापन करता है वह सुखी व शांत रहता है और जो निसर्ग के नियमों का उल्लंघन करता है वह दुःखी व व्याकुल होता है। इसका कोई अपवाद नहीं है। भगवान् बुद्ध का धम्म प्रकृति के नियमों पर आधारित है इसलिए पूर्णतया वैज्ञानिक है, जिसे कोई भी, कभी भी, कहीं भी आजमा कर देख सकता है। परिणाम हमेशा एक जैसे ही आयेंगे। बौद्ध व्यक्ति नैसर्गिक नियमों पर (सृष्टि के कानून पर) बहुत आस्था रखता है, और जीवन में उसका पालन करता है।

बौद्धों में किसी सृष्टि के रचयिता या निर्माता पर विश्वास रखने की परम्परा नहीं है। सृष्टि के ऐसे किसी निर्माता का सही ठिकाना नहीं लगता, उसकी केवल तर्कों के बल पर कल्पना ही की जाती है। यह सृष्टि भी कोई

अन्तिम निर्मिति नहीं है, सृष्टि का हमेशा विकास होता रहता है। निसर्ग में हमेशा परिवर्तन होता रहता है। प्रत्येक इकाई हमेशा परिवर्तित होती ही रहती है। कुछ से कुछ बनती ही रहती है। सृष्टि के चक्र का कहीं भी पूर्ण विराम नहीं है, हर जगह परिवर्तन है। इसे ही भगवान् बुद्ध **भव संसार** कहते हैं।

दुःख, यह एक सच्चाई है। मनुष्य के इन दुःखों को दूर कैसे किया जाय? इंसान को वास्तविक सुख कैसे मिले? मानव समाज दुःख मुक्त हो और वास्तविक सुख शान्ति कैसे प्राप्त करे? इसी का हल भगवान् बुद्ध ने खोज निकाला और उसे जीवनपर्यन्त सिखाते रहे। उन्होंने मानवता की पूजा सिखाई, वास्तविक मानव धर्म सिखाया। आदमी, आदमी से अच्छा बर्ताव करे, एक दूसरे के दुःख–दर्द को समझकर उन्हें मिटाने में लगे, एक दूसरे से प्रेम भाव और करुणा मैत्री से व्यवहार करने लगे तो मानव समाज सुखी बनेगा।

कुछ लोग तर्क देते हैं कि हमारे अकेले धम्म अपनाने से क्या होगा, जब तक कि और लोग भी धम्म न अपनायें। ऐसे लोगों को यह समझना पड़ेगा कि एक व्यक्ति समाज की एक इकाई होता है। जब एक व्यक्ति धम्म अपनाकर अपने मन को राग, द्वेष और मोह से मुक्त करके निर्मल बनायेगा तो समाज की कम से कम एक इकाई तो निर्मल होगी। समाज में एक व्यक्ति की कटुता में कमी आयेगी। एक व्यक्ति के दुःखों में तो कमी आयेगी। व्यक्ति से ही समाज, समाज से देश और देश से विश्व बनता है। इसीलिए भगवान् बुद्ध ने कहा कि प्रसन्न व्यक्ति ही प्रसन्न विश्व का निर्माण करते हैं।

भगवान् बुद्ध की करुणा और विश्व शान्तिः वर्तमान सन्दर्भ में

करुणा के बिना जीवन कृत्रिम, पाखण्ड और नीरस है। नैतिक मूल्यों के मामले में आज मनुष्य अवमूल्यन से ग्रस्त हो चुका है। उसके लिए हम सभी जिम्मेदार हैं। यदि ऐसा प्रतीत होने लगे तो समझ लेना चाहिए कि भीतर करुणा जग रही है। पीड़ितों की आह बनकर करुणा हमें प्रतिपल पुकार रही है किन्तु हम सुनने को तैयार ही नहीं हैं। वृत्तियों का रिश्ता चित्त से है जबकि करुणा निर्मल हृदय से सम्बन्धित है। लम्बी साधना के बाद जब गौतम सिद्धार्थ के मन में करुणा जगी तो वे भगवान् बुद्ध बन गये।

बुद्ध की साधना का लक्ष्य व्यक्तिगत निर्वाण न होकर सर्वगत कल्याण था जिसकी यात्रा आत्मकल्याण के आगे लोककल्याण तक चलती है। ऐसा व्यक्ति करुणा की मूर्ति होता है। वह दुःखियों की आह से द्रवित होकर कहता है कि संसार के सारे दुःखों को मेरे भीतर उड़ेल दो। हृदय में करुणा का महाभाव जगते ही क्रूरता, हिंसा, अन्याय, अत्याचार आदि कुप्रवत्तियाँ विसर्जित होने लगती हैं और शान्ति का पथ प्रशस्त होने लगता है। युद्ध समस्याओं का अन्तिम समाधान नहीं है। युद्ध में न कोई हारता है और न ही कोई जीतता है। सारी समस्याओं का समाधान उस दिन निकलेगा, जिस दिन मनुष्य के भीतर करुणा जाग्रत होगी। तब वह अवश्य ही अपने भीतरी विकारों पर निर्णायक विजय हासिल करेगा। जिसने अपने को नहीं जीता, वह दुनिया को कैसे जीत सकता है। बुद्ध की करुणा किसी चमत्कार का परिणाम नहीं है बल्कि आत्मविजय का फल है। उनके भीतर करुणा की धारा फूटी थी एक व्यक्ति की रुग्ण कन्या को देखकर, बूढ़े बैल की पिटाई देखकर, जमीन पर घिसटते हुए एक व्यक्ति के बुढ़ापे को देखकर और कंधे पर लदे शव को देखकर। उन सभी को देखने के बाद उन्होंने अनुभव किया कि जब सारा संसार दुःख की आग में झुलस रहा हो तो निर्वाण का उत्सव मनाने का अवसर कहाँ? करुणा की कोख से जन्म लेकर ही सारे गुण–सद्गुण का रूप लेते

हैं। दान, दया, अहिंसा, प्रेम, शान्ति आदि गुण करुणा से जुड़कर बनते हैं। करुणा के स्पर्श के बिना दया और दान प्रदर्शन बनकर अहंकार की पुष्टि करते हैं।

बुद्ध की करुणा

1. मैं किसी के प्रतिदान की आशा नहीं करता, न ही मैं स्वर्ग में पुनर्जन्म चाहता हूँ। परन्तु मैं मनुष्यों की कल्याण की खोज करता हूँ। उन लोगों को वापस लाना चाहता हूँ जो पथविचलित हो गये हैं। उन लोगों को आलोकित करना चाहता हूँ जो भ्रम की निशा में जी रहे हैं, संसार से समस्त पीड़ा और समस्त दुःख को निकालना चाहता हूँ।
2. मैं स्वयं के कल्याण के लिए विश्व के हित–साधन का प्रयास नहीं करता। मैं हित से प्रेम करता हूँ क्योंकि यह मेरी आकांक्षा है कि मैं प्राणिभाव के आनन्द के लिए कार्य करुँ।
3. तुम्हारे कष्टों का कारण जो भी हो, पर दूसरों को आहत न करो।
4. कर्त्तव्य के पथ का अनुसरण करो, अपने भाइयों के प्रति स्नेह प्रदर्शित करो और उन्हें कष्टों से मुक्त करो।
5. जो भी प्राणियों को चोट पहुँचाये या उनका अहित करे, जिसके मन में किसी भी प्राणि के प्रति सहानुभूति न हो, उसे उसी के रूप में जानो।
6. समस्त प्राणियों के प्रति कल्याण–भावना ही सच्चा धर्म है। समस्त जीवित प्राणियों के प्रति अपने हृदय में अनन्त कल्याण भावना का पल्लवन करो।
7. तुम्हारा उत्साह विचलित न हो, तुम्हारे अधरों से कोई भी बुरे वचन न निकले, तुम सदा परोपकारी बनो, तुम्हारा हृदय प्रेम से परिपूर्ण तथा गुप्त द्वेष से रहित हो, तुम इन दुष्कर्मियों को भी अपने प्रेमपूर्ण विचारों से– उदार, गम्भीर, सीमाहीन तथा क्रोध और घृणा से पूर्णतया रहित विचारों से, आप्लावित कर दो।
8. सधर्म के प्रमुख लक्षण हैं– सदिच्छा, प्रेम, सत्यनिष्ठा, पवित्रता, अनुभूति की उदारता और दया।
9. सभी प्राणी आनन्द की आकांक्षा करते हैं, इसलिए समस्त प्राणियों तक अपनी करुणा का प्रसार करो।
10. इस संसार में घृणा को घृणा के द्वारा नहीं रोका जा सकता। मात्र प्रेम के द्वारा ही उसका समाधान होता है। यह सनातन नियम है।
11. धैर्य के साथ सहनशीलता सबसे ऊँची परम्परा है। बुद्ध ने कहा है– निर्वाण सर्वोपरि है। वह विराली नहीं है जो दूसरों को कष्ट देता है और न वह तपस्वी ही है जो दूसरों का उत्पीड़न करता है।
12. जो दूसरों को दुःख पहुँचाकर स्वयं आनन्द पाना चाहता है वह घृणा से नहीं बच सकता है क्योंकि वह स्वयं को घृणा के पाशों में फँसा लेता है।
13. उसे सम्पूर्ण संसार के प्रति सदिच्छा विकसित करने दो, एक ऐसे मन का विकास करने दो जो सीमातीत (और बन्धुत्वपूर्ण) हो और जो ईर्ष्या और घृणा से विरहित होकर ऊपर, नीचे और आरपार निर्विघ्न रूप से परिव्याप्त हो जाय।
14. जिस प्रकार एक माता अपने जीवन को भी दाँव में लगाकर अपने पुत्र की रक्षा

करती है, ठीक उसी प्रकार जिसने सत्य को जान लिया है, उसे समस्त प्राणियों के मध्य अपनी शुभ इच्छा का अपरिमित विकास करने दो।

15. सारे संसार के प्रति ऊपर, नीचे, चारों ओर निर्दोष रूप से विभेदकारी या पक्षपात की भावना का मिश्रण किये बिना, अपनी शुभ इच्छा का विकास करना चाहिए।

16. परोपकारी व्यक्ति से सभी प्रेम करते हैं, उसकी मित्रता को बहुमूल्य माना जाता है, मृत्यु के समय उसका हृदय आनन्द से परिपूर्ण होकर विश्राम करता है क्योंकि यह प्रायश्चित का दुःख नहीं भोगता, उसे अपने पुरस्कार का विकसित फूल तथा परिपक्व फल प्राप्त होता है।

17. इस तत्त्व को समझना अत्यन्त कठिन है कि अपना भोजन दूसरों को देकर हम अधिक खुशी प्राप्त करते हैं, दूसरों को वस्त्र देने से हमें अत्यधिक सुन्दरता की प्राप्ति होती है, पवित्रता और सत्य के प्रतिष्ठानों की स्थापना करने से हमें महान् कोषों की प्राप्ति होती है।

18. जिस प्रकार एक वीर योद्धा रणक्षेत्र को प्रस्थान करता है, इसी प्रकार वह व्यक्ति भी होता है जिसमें देने की क्षमता होती है। स्नेह और करुणा से परिपूर्ण होकर वह श्रद्धापूर्वक दान करता है तथा समस्त घृणा, ईर्ष्या और क्रोध का परित्याग कर देता है।

19. परोपकारी व्यक्ति मुक्ति के पथ को पा लेता है। वह एक ऐसे व्यक्ति के समान होता है जो इसलिए बाग लगाता है ताकि आने वाले वर्षों में उसके लिए सुरक्षित रूप से आश्रय, फूल और फल प्राप्त हो सके। ठीक ऐसा ही फल परोपकार का होता है। ठीक ऐसा ही आनन्द उसे प्राप्त होता है जो जरूरतमंद की सहायता करता है, ठीक ऐसा ही निर्वाण के सम्बन्ध में भी है।

20. प्रेम का जो पाशा तुम्हें अपने खोये हुए पुत्र के साथ बाँधता है, यह समान तीव्रता के साथ तुम्हें अपने समस्त बंधुओं के साथ बाँधे। तब अपने पुत्र के स्थान पर तुम सिद्धार्थ से भी अधिक महान् व्यक्ति प्राप्त करोगे, तुम बुद्ध को, सत्य के उपदेश को, धर्म के प्रचारक को प्राप्त करोगे और निर्वाण की प्रशान्ति तुम्हारे हृदय में प्रविष्ट होगी।

21. दयालुता के कार्यों के निरन्तर सम्पादन से ही अमरत्व तक पहुँचा जा सकता है। करुणा और परोपकार के द्वारा पूर्णता की उपलब्धि होती है।

22. सबसे बड़ी आवश्यकता स्नेहपूर्वक हृदय की है।

भगवान् बुद्ध की मानवता

1. जो सद्गुणों में कुशल है, जो शांत स्थिति को प्राप्त करना चाहता है, उसे इस प्रकार व्यवहार करना चाहिए, उसे समर्थ होना चाहिए, उसे ईमानदार होना चाहिए, उसे मृदुभाषी तथा विनम्र होना चाहिए।

2. उसे संतोषी होना चाहिए, उसकी आवश्यकतायें अधिक नहीं होनी चाहिए, उस पर बहुत जिम्मेदारियाँ नहीं होनी चाहिए। उसकी वृत्ति सीमित होनी चाहिए, उसे इंद्रियों से संयत होना चाहिए, उसे विवेकशील होना चाहिए, उसे सावधान होना चाहिए तथा उसे (गृहस्थ) जनों में लोभवश आसक्त नहीं होना चाहिए।

3. उसे कोई भी छोटी से छोटी ऐसी गलती नहीं करनी चाहिए जिससे विज्ञजन उसे दोषी ठहरा सकें। उसकी यही कामना होनी चाहिए कि सभी प्राणियों का मंगल हो, सभी प्राणी सकुशल रहें, सभी प्राणियों के चित्त में परहित की भावना हो।

4. जितने भी प्राणी हैं दुर्बल या सबल, ऊँचे, ह्रष्ट–पुष्ट या छोटे कद के, छोटे या बड़े, कैसे भी हैं।

5. चाहे दिखाई देते हों या न दिखाई देते हों, चाहे समीप रहते हों या दूर रहते हों, चाहे पैदा हो गये हों, या अभी पैदा होने वाले हों, सभी प्राणी सुखी रहें।

6. कोई किसी को धोखा न दे। कोई किसी से घृणा न करे, कोई किसी का बुरा न चाहे, क्रोध से अथवा द्वेषवश किसी को हानि न पहुँचाये।

7. जैसे माँ अपनी जान को खतरे में डालकर भी अपने इकलौते पुत्र की रक्षा के लिए तैयार रहती है, उसी प्रकार आदमी को अपने चित्त में वैसा ही भाव असीम रूप में बनाना चाहिए।

8. उसे समस्त लोक में अपनी असीम मैत्री का संचार करना चाहिए। ऊपर, नीचे, चारों ओर बिना किसी बाधा के, बिना किसी शत्रुता के।

9. चाहे वह खड़ा हो, चलता हो, बैठा हो, लेटा हो, जब तक वह जागता रहे, उसे अपनी सतत जागरुकता बनाये रखनी चाहिए, कहा जाता है कि यही श्रेष्ठ जीवन है।

10. किसी (मिथ्या) दृष्टि में न पड़े, शीलवान हो, ज्ञानी हो, इंद्रिय–सुखों में आसक्त न हो, ऐसा होने से ही वह पुनः गर्भ में जाने से बच सकता है।

11. संक्षेप में भगवान् बुद्ध ने उनसे कहा, ''अपने शत्रुओं से भी मैत्री करो।''

पीड़ियों को सांत्वनाः दुःखियों का दुःख हरने वाले उत्कृष्ट चिकित्सक

विशाखा एक उपासिका थी। भिक्खुओं को प्रतिदिन दान देना उसकी दैनिकचर्या थी। एक दिन उसके साथ रहने वाली उसकी पोती सुदत्ता बीमार हुई और मर गई। विशाखा के लिए यह शोक असह्य हो गया। उसकी दाह–क्रिया के बाद वह भगवान् बुद्ध के पास गई और आँखों में आँसू भरे हुए एक ओर बैठ गई। तथागत ने पूछा, ''विशाखा! तू किसके लिए दुःखी और शोकाकुल बैठी है, और आँखों से आँसू गिरा रही है?'' उसने उन्हें अपनी पोती की मृत्यु की बात बताई और कहा, ''वह बहुत आज्ञाकारिणी थी और उसके जैसी अब मिल भी नहीं सकती।'' ''विशाखा! सावत्थी में कुल कितनी लड़कियाँ होंगी?'' ''भगवान्! लोगों का कहना है कि करोड़ों!'' यदि वे सभी तुम्हारी पोतियाँ हों, तो क्या तुम उनको प्यार नहीं करोगी?'' ''भगवान् निश्चय से।'' ''और सावत्थी में प्रतिदिन कितनों की मृत्यु होती है?'' ''भगवान्! अनेक की।'' ''तब तो एक क्षण भी ऐसा न होगा, जब तुम्हें किसी न किसी के लिए शोक न करना पड़े?'' ''भगवान्! सत्य है!'' ''तब क्या तुम दिन–रात रोते हुए अपनी जीवन गुजारोगी?'' ''भगवान्! आपने ठीक–ठीक समझा दिया, मैं समझ गई।'' ''तो फिर अब और शोक मत करो।''

बुद्ध का धम्म

- जीवन की पवित्रता बनाए रखना धम्म है
- जीवन में पूर्णता प्राप्त करना धम्म है
- निर्वाण में रहना धम्म है
- तृश्णा का त्याग धम्म है

- यह मानना कि सभी मिश्रित (संयुक्त) पदार्थ अनित्य हैं, धम्म है
- कर्म को नैतिक–व्यवस्था का उपकरण (साधन) मानना, धम्म है

बुद्ध का अधम्म

- परा–प्राकृतिक में विश्वास धम्म नहीं है
- ईश्वर में विश्वास धम्म का आवश्यक अंग नहीं है
- ब्रह्म में लीनता पर आधारित धर्म मिथ्या धम्म है
- आत्मा में विश्वास धम्म नहीं है
- बलि (यज्ञ–कर्म) में विश्वास धम्म नहीं है
- निराधार कल्पना पर आश्रित विश्वास धम्म नहीं है
- धम्म की पुस्तकों का अध्ययन मात्र धम्म नहीं है
- धर्म–ग्रंथों को गलती की संभावना से परे मानना धम्म नहीं है

बुद्ध का सद्धम्म

- सद्धम्म का कार्य मन के मैल को दूर कर उसे निर्मल बनाना, संसार की 'धम्म–राज्य' बनाना, धम्म तभी सद्धम्म कहला सकता है, जब वह प्रज्ञा की वृद्धि करे, धम्म तभी सद्धम्म है जब वह सभी के लिए ज्ञान का द्वार खोल दे।
- धम्म तभी सद्धम्म है जब वह यह शिक्षा देता है कि केवल 'विद्वान' होना पर्याप्त नहीं, अन्यथा यह पांडित्य–प्रदर्शन मात्र होगा।
- धम्म तभी सद्धम्म है जब वह सिखाता है कि जो चीज आवश्यक है वह 'प्रज्ञा' है धम्म तभी सद्धम्म कहला सकता है, जब वह मैत्री की वृद्धि करे, धम्म तभी सद्धम्म है जब वह यह शिक्षा देता है कि केवल 'प्रज्ञा' पर्याप्त नहीं है : इसके साथ शील का होना भी अनिवार्य है।
- धम्म तभी सद्धम्म है जब वह केवल यह शिक्षा देता है कि प्रज्ञा और शील के साथ–साथ करुणा का होना भी अनिवार्य है।
- धम्म तभी सद्धम्म हो सकता है, जब वह यह शिक्षा दे कि करुणा से भी अधिक मैत्री की आवश्यकता है।
- धम्म तभी सद्धम्म हो सकता है, ज बवह समस्त सामाजिक भेदभावों को मिटा दें धम्म तभी सद्धम्म हो सकता है, जब वह आदमी और आदमी के बीच की दीवार को गिरा दें।
- धम्म तभी सद्धम्म है, ज बवह यह शिक्षा दे कि किसी आदमी का 'जन्म' से नहीं, बल्कि उसके गणों से ही मूल्यांकन किया जाना चाहिए।

बुद्ध का व्यक्तित्व

- जितने भी वर्ण मिलते हैं उनसे यही ज्ञात होता है कि तथागत एक अति–संदुर व्यक्ति थे।
- उनकी रचना स्वर्ण पर्वत के शिखर के समान थी। उनका कद ऊंचा था, शरीर सुडौल था तथा उनका दर्शन आकर्शक था।
- उनकी लंबी–लंबी बाहें, उनकी शेर–सी चाल, उनकी वृशभ (बैल)–सी आंखे, उनका सौंदर्य, उनकी स्वर्ण समान दीप्ति, उनकी चौड़ी छाती सभी को अपनी ओर आकर्शित करती थीं।
- उनकी भौंहे, उनका माथा, उनका चेहरा और उनकी आंखे, उनका बदन, उनके हाथ उनके पांव अथवा उनकी चाल उनके शरीर के

किसी भी हिस्से पर जिसकी भी आंखे पड़ती थीं, वह वहीं स्थिर हो जाता था।

- जो कोई भी उनको देखता था, वह उनकी तेजस्विता, उनकी शक्ति, उनके अनुपम सौंदर्य से प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाता था।
- उनका दर्शन होने पर किसी भी ओर जाने वाला व्यक्ति रुक जाता था, जो खड़ा होता था, वह उनके पीछे–पीछे हो लेता था, जो शांतिपूर्वक और धीरे–धीरे चलता होता था, वह तेजी से भागने लगता था और जो बैठा होता वह तुरंत खड़ा हो जाता था।
- जिनकी उनका दर्शन हो जाता उनमें से कुछ हाथ जोड़कर उनके प्रति सम्मान प्रदर्शित करते थे, दूसरे श्रद्धा से सिर झुकाकर उन्हें नमन करते थे, कुछ लोग उन्हें स्नेहपूर्ण शब्दों से संबोधित करते थे, कोई भी उनको सम्मान अर्पित किए बिना नहीं जाता था।
- सभी उनसे स्नेह करते थे और उनका आदर करते थे।
- स्त्री–पुरुश सभी उनके वचन सुनने के लिए उत्सुक रहते थे।
- उनका स्वर असाधारण रूप से मधुर था, गहन–गंभीर था, प्रीतिकर था, गुंजायमान था और अर्थपूर्ण था। ये सब उनकी वाणी को ऐसा बना देते थे, मानो वह कोई दिव्य संगीत हो।
- उनका स्वर श्रोता को आश्वस्त करने वाला था। उनकी तेजस्विता, उनकी झलक अत्यधिक प्रेरणादायक थी, रौबीली थी।
- केवल उनका व्यक्तित्व ही ऐसा था, जो उनको न केवल अग्रणी बनाता था, बल्कि उनके अनुयायियों के दिलों का देवता बना देता था।
- उनकी देशना को सुनने के लिए बहुत से श्रोता आते थे।
- यह बात महत्व की नहीं थी कि वह क्या कहते थे, वह भावनाओं को प्रभावित करते थे, जो भी उनको सुनने थे, वे उनकी इच्छा–शक्ति, उनकी दृढ़ इच्छा–शक्ति के आगे झुक जाते थे।
- वह श्रोताओं के मन में ऐसी भावना पैदा कर देते थे कि वह जो भी शिक्षा दे रहे हैं वह न केवल सत्य है, बल्कि वह उनकी मुक्ति की आशा है।
- उनके श्रोता उनकी वाणी में उस सत्य के दर्शन करते थे, जो दासों को मुक्त कर उन्हें स्वतंत्र बना देता है।
- जब भी वह स्त्री–पुरुशों से बातचीत करते, तो उनकी शांत छवि लोगों के मन में एक आदर की भावना का संचार करती थी और उनकी मधुर वाणी लोगों को हर्शोन्माद और विस्मय से विभोर कर देती थी।
- डाकू अंगुलिमाल और आळवी के आदमखोर को कौन धम्म की दीक्षा दे सकता था? एक शब्द के द्वारा कौन राजा पसेनदि तथा रानी मल्लिका का मेल मिलाप करा सकता था? जिस पर उनका प्रभाव पड़ जाता, वह सदा के लिए उन्हीं का हो जाता। इतना मोहक था उनका व्यक्तित्व।

प्रत्यक्षदर्शियों का कथन

- इस परंपरागत मत की पुश्टि उन लोगों की साक्षी से भी होती है, जिन्होंने भगवान बुद्ध को उनके जीवनकाल में देखा था तथा उनसे भेंट की थी।

- ऐसा ही प्रत्यक्ष–दर्शी साल नामक ब्राह्मण था। भगवान बुद्ध को आमने–सामने देखकर उनसे उनकी प्रशंसा में इस प्रकार उद्‌गार व्यक्त किए थे।
- जब तथागत के सामने आया, तो उस ब्राह्मण ने बैठने तथा कुशल समाचार पूछने के बाद भगवान बुद्ध के शरीर पर बत्तीस महापुरुश लक्षणों के होने की जांच की और समय रहते उन्हें प्रत्यक्ष देखा।
- बत्तीस महापुरुश लक्षणों के विशय में असंदिग्ध होकर भी उसका यह संदेह बना ही रहा कि वह बुद्ध हैं यह नहीं? लेकिन उसने पुराने वृद्ध ब्राह्मणों से, आचार्यो–प्राचार्यों से यह सुन रखा था कि जो अर्हत होते हैं, सम्यकसम्बुद्ध होते हैं, वे अपनी स्तुति सुनने पर अपने आपको प्रकट करते हैं। इसलिए उसने निम्नलिखित शब्दों से तथागत का गुणगान करने का विचार बनाया।
- ''भगवान! आप का शरीर गुणों से पूर्ण है, परिशुद्ध है, यौवन को प्राप्त है, आकर्शक है, स्वर्ण–वर्ण है, दांतों से आभा चमकती है, शरीर की पूर्णता दर्शाती है कि आप बत्तीस लक्षणों से युक्त महापुरुश हैं।''
- ''स्पश्ट दृश्टि, सुंदर, ऊंचे और सीधे हैं आप। अपने भिक्खुसंघ में सूर्य–समान देदीप्यमान हैं। इतने भद्र हैं, ऐसे स्वर्णिम–वर्ण हैं, अपने तारुण्य को आप अनागरिक श्रमण बनकर क्यों व्यर्थ गंवा रहे हैं?
- ''आप को चक्रवर्ती सम्राट बनकर संसार पर राज करना चाहिए और समुद्र पर्यंत आप का शासन होना चाहिए। अभिमानी राजाओं को आपके सम्मुख नतमस्तक होना चाहिए और आपको समस्त प्राणियों पर राजाओं के राजा के रूप में राज करना चाहिए।
- आनंद थेर के अनुसार तथागत का शरीर इतना अधिक स्वच्छ और देदीप्यमान था कि यदि उनके बदन पर किसी स्वर्णिम–वस्त्र का जोड़ा रखा जाता तो उसकी जयोति शरीर की ज्योति के सम्मुख फीकी पड़ जाती।
- तब इसमें क्या आश्चर्य है यदि तथागत के विरोधी उन्हें एक जादूगर युवक समझते थे।

उनके नेतृत्व की क्षमता

- भिक्खुसंघ का कोई वैधानिक अध्यक्ष नहीं था। तथागत को संघ पर कोई अधिकार नहीं था। भिक्खुसंघ एक स्वायत संस्था थी।
- तो भी संघ और उसके सदस्यों पर तथागत का क्या अधिकार था?
- इस विशय में हमारे पास तथागत के समकालीन दो व्यक्तियों के प्रमाण (साक्ष्य) उपलब्ध हैं।
- एक बार तथागत राजगृह के वेळुवन में विहार कर रहे थे।
- एक दिन प्रातः तथागत राजगृह में भिक्खा के लिए गए, किंतु स्वयं को जल्दी आ गया समझ वह परिव्राजकाराम में सकुलदायी के पास चले गए।
- उस समय सकुलदायी बहुत से परिव्राजकों से घिरा हुआ था। वे 'हैं' अथवा 'नहीं हैं' की तात्त्विक चर्चा करके बहुत शोर मचा रहे थे।
- कुछ दूर से जब सकुलदायी ने तथागत को आते देखा, तो उसने अपने साथियों से कहा, ''चुप करो। शोर मत मचाओं। श्रमण गौतम आ रहे हैं। उन्हें शोर प्रिय नहीं है।''
- इस प्रकार वे चुप हो गए। तब तक तथागत आ पहुंचे। सकुलदायी ने कहा, ''भगवान! प्रार्थना है कि आप हमारे साथ सम्मिलित हों,

आप का सच्चे हृदय से स्वागत है। बहुत समय बीता जब आप पिछली बार यहां पधारे थे। आपके लिए आसन सुसज्जित है। कृपया आसन ग्रहण करें।''

- तथागत ने आसन ग्रहण किया और पूछा, ''आपका क्या विशय था और क्या चर्चा चल रही थी जिसमें आधा पड़ी?''
- सकुलदायी ने उत्तर दिया, ''अभी उसे छोड़े, बाद में आप स्वयं आसानी से जान जाएगें।''
- कुछ समय पूर्व, जब नाना मतों के श्रमण और ब्राह्मण संथागार में इकट्ठे हुए तो उनमें इस विशय पर चर्चा चली थी कि मगध के लोगों के लिए यह कितनी अच्छी बात है कि ऐसे श्रमण और ब्राह्मण गणाचार्य हैं, जिनके बहुत से अनुयायी हैं, विख्यात आचार्य हैं, सभी नाना मतों के संस्थापक हैं, जिनका बहुत से लोग आदर करते हैं, वे सभी राजगृह में वर्शावास करने आए हैं।
- उनमें पूर्ण कस्सप हैं, मक्खली–गोसाल हैं, अजित–केशकंबल है, पकुधकच्चायन हैं, सज्जय बेलट्टिपुत्त हैं, निगंठनाथ पुत्त हैं, सभी विशिश्ट हैं, सभी यहां वर्शावास करने आए हैं, उनमें श्रमण गौतम भी हैं, जो संघ के नायक हैं, ज्ञात–विख्यात धम्मानुशासक हैं, धम्म–संस्थापक हैं; अनेक लोगों के श्रद्धा भाजन हैं।
- अब इन ज्ञात–विख्यात विशिश्ट श्रमण–ब्राह्मणों में, पुरुशों में कौन है, जो अपने शिश्यों द्वारा सम्मानित किया जाता है, पूजा जाता है और अलंकृत किया जाता है, सत्कृत होता है? और वे कितने गौरव की भावना के साथ अपने गुरु के पास रहते हैं?
- कुछ ने कहा, ''पूर्ण कस्सप का कोई आदर सत्कार नहीं करता, कोई पूजा नहीं करता, कोई अलंकरण नहीं करता। वे अपने गुरु के पास उनके प्रति किसी भी प्रकार का आदर–सम्मान रखे बिना रहते हैं।
- एक समय ऐसा भी हुआ कि पूर्ण कस्सप अपने सैकड़ों अनुयायियों को उपदेश दे रहे थे, तब तक एक शिश्य बीच में ही बोल पड़ा, ''पूर्ण कस्सप से प्रश्न मत पूछो। वह इस विशय में कुछ नहीं जानता। मुझसे पूछो। मैं जानता हूं। मैं आप सबको सब कुछ समझा दूंगा।''
- तब पूर्ण कस्सप ने आंखों से आंसू भरकर और हाथ फैला कर कहा, ''चुप रहिए। शोर मत कीजिए।''

भगवान् बुद्ध के संदेश के बारे में स्वामी विवेकानन्द के विचार

भगवान् बुद्ध मेरे इष्टदेव हैं – मेरे ईश्वर हैं। उनका कोई ईश्वरवाद नही, वे स्वयं ईश्वर थे। इस पर मेरा पूर्ण विश्वास है। हर एक धर्म में हम किसी एक प्रकार की साधना को चरम सीमा पर पहुँची हुई पाते हैं। बौद्ध धर्म में निष्काम कर्म का भाव अत्यन्त विकसित है। तुम लोग बौद्ध धर्म तथा ब्राह्मण धर्म को समझने में भूल न करो। बौद्ध धर्म हमारे सम्प्रदायों में से एक है। भारतीय वर्णव्यस्था, कठिन कर्मकाण्ड एवं दार्शनिक वाद–विवादों से ऊबकर गौतम नामक एक महापुरुष ने बौद्ध धर्म की स्थापना की। कुछ लोग कहते हैं कि हमारा एक विशेष कुल में जन्म हुआ है और इसलिए हम उन लोगों से श्रेष्ठ हैं, जिनका जन्म ऐसे वंश में नहीं हुआ। भगवान् बुद्ध का इस सिद्धान्त में कोई विश्वास न था, वे इस प्रकार के जातिभेद के विरोधी थे। और पुरोहित लोग धर्म के नाम पर जो कपटाचरण द्वारा स्वार्थसिद्धि करते थे, इसके भी वे घोर विरोधी थे। इसलिए उन्होंने एक ऐसे धर्म का प्रचार किया जिसमें कामनाओं तथा वासनाओं के लिए स्थान

न था। वे दर्शन तथा ईश्वर के सम्बन्ध में सम्पूर्ण अज्ञेयवादी थे।

उनसे कई बार ईश्वर के अस्तित्व के सम्बन्ध में प्रश्न पूछे गये, पर उन्होंने सदैव यही उत्तर दिया, ''मैं नहीं जानता।'' उनसे पूछा गया कि मनुष्य का प्रकृत कर्तव्य क्या हैं। उन्होंनें कहा, ''शुभचरित्र बनो और शुभ कर्म करे।'' एक बार पाँच ब्राह्मणों ने आकर उनसे विनती की, ''भगवन्! हमारे वाद–विवाद का न्याय कीजिए।'' उनमें से एक ने कहा, ''भगवन्, मेरे शास्त्रों में ईश्वर का यह स्वरूप बतलाया गया है और उसकी प्राप्ति के लिए यह मार्ग दर्शाया गया है।'' दूसरे ब्राह्मण ने कहा, ''नहीं, यह सब मिथ्या है, क्योंकि मेरे शास्त्र में इसके विपरीत लिखा है और ईश्वर प्राप्ति का अन्य मार्ग बतलाया गया है।'' इस प्रकार दूसरों ने भी शास्त्रों की दुहाई देकर ईश्वर के स्वरूप तथा उसकी प्राप्ति के सम्बन्ध में अपने–अपने मत प्रकट किये। बुद्धदेव यह विवाद शान्तिपूर्वक सुनकर उनसे क्रमशः पूछने लगे, ''क्या किसी के शास्त्र में यह भी कथन है कि ईश्वर कभी क्रोध करता है, किसी की हानि करता है या अशुद्ध है'' उन सबने कहा, ''नहीं भगवन्, हमारे सभी शास्त्र यही कहते हैं कि ईश्वर शुद्ध, विकाररहित और कल्याणकारक है।'' तब भगवान् बुद्ध बोले, ''मित्रों, तब तुम पहले शुद्ध और सदाचारी बनने की चेष्टा क्यों नहीं करते, जिससे तुम्हें ईश्वर का ज्ञान हो सके।''

बुद्ध ही एक व्यक्ति थे, जो पूर्णता तथा यथार्थ में निष्काम कहे जा सकते हैं ऐसे अन्य कई महापुरुष थे, जो अपने को ईश्वर का अवतार कहते थे और विश्वास दिलाते थे कि जो उनमें श्रद्धा रखेंगे, वे स्वर्ग प्राप्त कर सकेंगे। पर बुद्ध के अधरों पर अन्तिम क्षण तक ये ही शब्द थे, ''अपनी उन्नति अपने ही प्रयत्न से ही होगी। अन्य कोई इसमें तुम्हारा सहायक नहीं हो सकता। स्वयं अपनी मुक्ति प्राप्त करो।'' अपने सम्बन्ध में भगवान् बुद्ध कहा करते थे, ''बुद्ध शब्द का अर्थ है – आकाश के समान अनन्त ज्ञानसम्पन्न; मुझ गौतम को यह अवस्था प्राप्त हो गयी है। तुम भी यदि प्राण–प्रण से प्रयत्न करो, तो उस स्थिति को प्राप्त कर सकते हो।'' बुद्ध ने अपनी समस्त कामनाओं पर विजय पा ली थी। उन्हें स्वर्ग जाने की कोई लालसा न थी और न ऐश्वर्य की ही कोई कामना थी। अपने राज–पाट और सब प्रकार के सुखों को तिलांजलि दे, इस राजकुमार ने अपना सिन्धु–सा विशाल हृदय लेकर नर–नारी तथा जीव–जन्तुओं के कल्याण हेतु, आर्यावर्त की वीथी–वीथी में भ्रमण कर भिक्षावृति से जीवन निर्वाह करते हुए अपने उपदेशों का प्रचार किया। जगत् में वे ही एकमात्र ऐसे हैं, जो यज्ञों में पशुबलि–निवारण, किसी प्राणी के जीवन की रक्षा के लिए अपना जीवन भी न्यौछावर करने को तत्पर रहते थे। एक बार उन्होंने एक राजा से कहा, ''यदि किसी निरीह पशु के होम करने से तुम्हे स्वर्ग प्राप्ति हो सकती है, तो मनुष्य के होम से किसी उच्च फल की प्राप्ति होगी। राजन उस पशु के पाश काटकर मेरी आहुति दे दो– शायद तुम्हारा अधिक कल्याण हो सके।''

राजा स्तब्ध हो गया। इस प्रकार हम देखते हैं कि भगवान् बुद्ध पूर्ण रूप से निश्काम थे। वे कर्मयोग के ज्वलन्त आदर्शस्वरूप थे और जिस उच्चावस्था पर वे पहुँच गये थे, उससे प्रतीत होता है कि कर्मशक्ति द्वारा हम भी उच्चतम आध्यात्मिक स्थिति को प्राप्त कर सकते है।

ईश्वर में विश्वास रखने से अनेक व्यक्तियों का मार्ग सुगम हो जाता है। किन्तु बुद्ध का चरित्र बताता है कि एक ऐसा व्यक्ति भी, जो नास्तिक है जिसका किसी दर्शन में विश्वास नहीं, जो न किसी सम्प्रदाय को मानता है और न किसी मन्दिर–मस्जिद में ही जाता है, जो घोर जड़वादी है, परमोच्च अवस्था प्राप्त कर सकता है। बुद्ध के मतामत या कार्यकलापों का मूल्यांकन करने का हमें कोई अधिकार नहीं। उनके विशाल हृदय का सहस्त्रांश पाकर भी मैं स्वयं को धन्य

मानता। बुद्ध की आस्तिकता या नास्तिकता से मुझे कोई मतलब नहीं। उन्हें भी वह पूर्णावस्था प्राप्त हो गई थी, जो अन्य जन भक्ति, ज्ञान या योग के मार्ग से प्राप्त करते है। केवल इसमें–उसमें विश्वास करने से ही पूर्णता प्राप्त नहीं होती, जल्पना से कोई अर्थसिद्धि नहीं होती। यह तो शुक–सारिका भी कर लेते है। केवल निश्काम कर्म ही मनुष्य को पूर्णत्व तक पहुँचा सकता है।

उपसंहार

भगवान बुद्ध की श्रेष्ठता को श्रद्धार्पण

- भगवान बुद्ध के जीवनकाल से ठीक पहले का समय भारतीय इतिहास का सर्वाधिक अंधकारमय युग था।
- चिंतन की दृष्टि से यह पिछड़ा हुआ युग था। उस समय का विचार धर्म–ग्रंथों के प्रति अंधभक्ति से बंधा हुआ था।
- नैतिकता की दृष्टि से भी यह अंधकारपूर्ण युग था।
- स्व–त्याग या चित्त की पवित्रता आदि जैसे यथार्थ नैतिक विचारों को उस समय के नैतिक–चिंतन में कोई उपयुक्त स्थान प्राप्त न था।
- बौद्ध धम्म ने स्वयं मनुष्य के अंदर छिपी हुई उसकी अपनी सामर्थ्य की ओर उसका ध्यान आकर्षित किया।
- इसलिए इस प्रगतिशील संसार को बौद्ध धम्म की आवश्यकता है, ताकि वह इससे ऊँची श्रेष्ठतम शिक्षा प्राप्त कर सके।''
- संसार के समस्त धार्मिक आचार्यो में भगवान् बुद्ध को ही यह गौरव प्राप्त है कि उन्होंने आदमी में विद्यमान क्षमता की तात्त्विक महानता को पहचाना, जिसके द्वारा वह बिना किसी बाह्य सहायता के स्वयं मोक्ष पथ पर अग्रसर हो सकता है।
- किसी अन्य धर्म में 'विद्या' को इतना महत्व दिया गया और 'अविद्या' की इतनी भर्त्सना नहीं की गई, जितनी बुद्ध धम्म में।
- कोई अन्य धर्म अपनी ऑख खुली रखने पर इतना बल नहीं देता।
- किसी अन्य धर्म ने मानसिक संस्कृति के विकास की इतनी गहरी तथा व्यवस्थित योजना प्रस्तुत नहीं की।
- उसे दार्शानिक होने के साथ–साथ सदाचारी पुरुष होना चाहिए।
- बौद्ध धम्म ने सदा मुक्ति के लिए विद्या (प्रज्ञा) की अनिवार्यता पर विशेष बल दिया है और अविद्य तथा तृष्णा को मोक्ष प्राप्ति की असफलता का कारण बताया है।

सन्दर्भ सूची

- भगवान् बुद्ध धम्म–सार व धम्म–चर्या।
- डॉ0 भीमराव अम्बेडकर, ''भगवान् बुद्ध और उनका धम्म''।
- आचार्य सत्यनारायण गोयनका, ''क्या बुद्ध दुक्खवादी थे?''
- आचार्य सत्यनारायण गोयनका, ''आत्मकथन''
- श्रीमद् भगवतमहापुराणम्, गीता प्रेस।
- बुद्ध वाणी, विवेकानन्द प्रकाशन